शैवतीर्थ खण्ड

तीर्थयात्रा–संबंधी कुछ ज्ञातव्य बातें

भगवान् शिव के तीर्थों की विवेचना करने से पहले तीर्थ के स्वरूप एवं तीर्थयात्रासंबंधी कुछ सामान्य बातों की जानकारी अपेक्षित है। इसीलिये पहले हम इन्हीं की चर्चा करेंगे।

'तीर्थ' शब्द का अर्थ है–पवित्र करनेवाला या तारनेवाला 'तृ–प्लवनतरणयो:' धातु से **'पातृतुदिवचिरिचिसिचिभ्यस्थक्'** इस उणादि सूत्र द्वारा 'थक्' प्रत्यय करने पर '**तीर्यते अनेन**(इससे तर जाता है)' इस अर्थ में तीर्थं या अर्धर्चादि से 'तीर्थ:' शब्द भी निष्पन्न: होता है। अमरसिंह ने निपान, आगम, ऋषिजुष्ट जल तथा गुरु की भी तीर्थ संज्ञा दी है–

निपानागमयोस्तीर्थमृषिजुष्टे जले गुरौ।

(अमरकोश 3/86, संपादित, श्रीविश्वनाथ झा, मोतीलाल बनारसीदास 1976)

टीकाकारों ने 'निपान' का अर्थ जलावतार–नदी आदि में थाह या पार होने का स्थान तथा उपकूप अथवा जलाशय, एवं आगम का अर्थ शास्त्र किया है। साथ ही ऋषिसेवित जल, उपाध्यायादि एवं अयोध्या, काशी आदि पवित्र स्थलों को भी उन्होंने तीर्थ कहा है।

त्रिकाण्डशेष के टीकाकार ने साम–दानादि उपायों, योग, ध्यान, सत्पात्र ब्राह्मण, अग्नि, निदान तथा जङ्गम, मानसिक एवं भौतिक इन त्रिविध पवित्र पदार्थों को भी तीर्थ में सम्मिलित किया है। (3/197 की नामचन्द्रिका टीका)। यहाँ पर हम तीर्थ का अर्थ अन्तिम तीन पदार्थ लेंगे।

वेद, महाभारत, रामायण आदि के साथ प्राय: सभी पुराणों में तीर्थों की महिमा गायी गयी है। पद्म एवं स्कंदपुराण तो तीर्थमहिमा से परिपूर्ण हैं। तीर्थों में किनको कब, कैसे क्या–क्या लाभ हुए तथा किस तीर्थ का कैसे प्रादुर्भाव हुआ–इसका बड़े सुन्दर ढंग से अतिविशद वर्णन उनमें किया गया है। तीर्थों की इतनी महत्ता इसलिये है कि वहाँ महान् पवित्रात्मा भगवत्प्राप्त महापुरुषों और संतों ने निवास किया है या श्रीभगवान् ने किसी भी रूप में कभी प्रकट होकर, उन्हें अपना लीलाक्षेत्र बनाकर मंगलमय कर दिया है।

शास्त्रों में तीन प्रकार के तीर्थ माने गये हैं–जंगम, मानस और स्थावर। जंगम का अर्थ चलता–फिरता तीर्थ। जैसे साधु–ब्राह्मण[1], गुरु, माता–पिता इत्यादि। मानसतीर्थ का अर्थ इन्द्रियसंयम एवं सद्गुणों का पालन करना। स्थावरतीर्थ को भौमतीर्थ भी कहते हैं। अर्थात् भूमि पर स्थित काशी, मथुरा, हरिद्वार जैसे पवित्र स्थलों; गंगादि पवित्र नदियों, मानसरोवर जैसे सरोवरों तथा कैलास आदि पर्वतों को स्थावरतीर्थ का उदाहरण माना जाता है।

जंगमतीर्थ

साधु–ब्राह्मणों को जंगम अर्थात् चलता–फिरता तीर्थ कहा गया है। इनके सद्वाक्यरूपी

---

1. 'ब्राह्मण' का यहाँ अभिप्राय स्वधर्म पर आरूढ़ ब्राह्मण। स्वधर्म पर आरूढ़ ब्राह्मण संत जैसा होता है।

निर्मल जल से मलिन व्यक्ति भी शुद्ध हो जाते हैं-

ब्राह्मणा जङ्गमं तीर्थं निर्मलं सार्वकामिकम्।
येषां वाक्योदकेनैव शुद्ध्यन्ति मलिना जनाः।। (शातातपस्मृ. 1/34)

इसी प्रकार रामचरितमानस में कहा गया है कि-

मुद मंगलमय संत समाजू। जो जग जंगम तीरथराजू।। (बालका. 1/4)

स्कंदपुराण में कहा गया है कि तीर्थ-यात्रा के प्रसंग से महापुरुषों के दर्शन के लिये जाना तीर्थ-यात्रा का मुख्य उद्देश्य है; अतः जिस भूभाग में संत-महात्मा निवास करते हैं, वही 'तीर्थ' (तारनेवाला स्थान) कहलाता है।

मुख्या पुरुषयात्रा हि तीर्थयात्रानुसङ्गतः।
सद्भिः समाश्रितो भूमिभागस्तीर्थतयोच्यते।। (संक्षिप्त स्क. पु. माहे. कुमा. 11/11)

भगवान् के स्वरूप का साक्षात्कार किये हुए भगवत्प्रेमी महात्मा स्वयं 'तीर्थ'-रूप होते हैं, उनके हृदय में भगवान् सदा प्रकट रहते हैं; इसलिये वे जिस स्थान में जाते हैं, वही तीर्थ बन जाता है। श्रीमद्भागवत में युधिष्ठिर महात्मा विदुरजी से कहते हैं-

भवद्विधा भागवतास्तीर्थभूताः स्वयं विभो।
तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तःस्थेन गदाभृता।। (श्रीमद्भा. 1/13/10)

अर्थात्-'प्रभो! आप-सरीखे भगवद्भक्त स्वयं तीर्थस्वरूप हैं; क्योंकि आपलोग अपने हृदय में विराजित भगवान् गदाधर के प्रभाव से तीर्थों को भी तीर्थ(पवित्र) बना देते हैं।'

अतएव ऐसे महात्मा पुरुषों के संग को तीर्थों से भी बढ़कर बताया गया है। स्कंदपुराण में कहा गया है कि-

तीर्थादप्यधिकः स्थाने सतां साधुसमागमः।
पचेलिमफलः सद्यो दुरन्तकलुषापहः।।
अपूर्वः कोऽपि सद्गोष्ठी सहस्रकिरणोदयः।
य एकान्ततयात्यन्तमन्तर्गततमोपहः।। (संक्षिप्त स्क. पु. माहे कुमा. 11/6-7)

अर्थात्-'सच है कि श्रेष्ठ(श्रद्धालु एवं सरल हृदय) पुरुषों या साधुओं-महापुरुषों के साथ समागम तीर्थ(स्थावर) से भी बढ़कर है; क्योंकि उसका परिपक्व फल तुरंत प्राप्त होता है। तथा वह दुरन्त-कठिनाई से दूर होनेवाले पापों का भी नाश कर देता है। श्रेष्ठ पुरुषों का संग हजारों किरणों से प्रकाशमान सूर्योदय की भाँति अद्भुत प्रभावशाली है; क्योंकि वह अन्तःकरण में व्याप्त अज्ञानरूप अन्धकार का अत्यन्त नाश करनेवाला है।'

भगवती गंगाजी ने भगीरथ से कहा-'तुम मुझे पृथ्वी पर ले जाना चाहते हो? अच्छा मैं तुमसे एक बात पूछती हूँ। देखो, मुझमें स्नान करनेवाले तो अपने पापों को मुझमें बहा देंगे, पर मैं उनके पापों

को कहाँ धोने जाऊँगी?

उत्तर में भगीरथ ने कहा-

साधवो न्यासिनः शान्ता ब्रह्मिष्ठा लोकपावनाः।
हरन्त्यघं तेऽङ्गसङ्गात् तेष्वास्ते ह्यघभिद्धरिः॥ (श्रीमद्भागवत 9/9/6)

अर्थात्-'इस लोक और परलोक की समस्त भोग-वासनाओं का सर्वथा परित्याग किये हुए शान्तचित्त ब्रह्मनिष्ठ साधुजन, जो स्वभाव से ही लोगों को पवित्र करते रहते हैं, अपने अंग-संग से आपके पापों को हर लेंगे, क्योंकि उनके हृदय में समस्त पापों को समूल हर लेनेवाले श्रीहरि नित्य निवास करते हैं।'

नारदभक्तिसूत्र(67-69) में भी बताया गया है कि भक्त तीर्थों को सुतीर्थ बना देते हैं। अर्थात् वे तीर्थों को भी पवित्र कर देते हैं।

महाभारत में कहा गया है कि जो ममता, अहंकार, राग-द्वेषादि द्वन्द्व और परिग्रह से रहित एवं भिक्षा से जीवननिर्वाह करते हैं, वे विशुद्ध अन्तःकरणवाले साधु-पुरुष तीर्थस्वरूप हैं। जिसकी बुद्धि में अहंकार का नाम भी नहीं हैं, वह तत्त्वज्ञानी पुरुष श्रेष्ठ तीर्थ कहलाता है।

निर्ममा निरहंकारा निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः।
शुचयस्तीर्थभूतास्ते ये भैक्ष्यमुपभुञ्जते॥
तत्त्ववित्त्वनहंबुद्धिस्तीर्थप्रवरमुच्यते। (महाभारत, अनुशासनपर्वणि, 108/5, 6)

आगे कहा गया है कि जिनके अन्तःकरण से तमोगुण, रजोगुण और सत्त्वगुण धुल गये हैं, अर्थात् जो तीनों गुणों से रहित हैं, बाह्य पवित्रता और अपवित्रता से युक्त रहकर भी अपने कर्त्तव्य (तत्त्वचिन्तन, ध्यान, उपासना आदि) का ही अनुसंधान करते हैं, जो सर्वस्व के त्याग में ही अभिरुचि रखते हैं, सर्वज्ञ और समदर्शी होकर शौचाचार के पालन द्वारा आत्मशुद्धि का सम्पादन करते हैं, वे सत्पुरुष ही परम पवित्र तीर्थस्वरूप हैं।

रजस्तमः सत्त्वमथो येषां निर्धौतिमात्मनः।
शौचाशौचसमायुक्ताः स्वकार्यपरिमार्गिणः॥
सर्वत्यागेष्वभिरताः सर्वज्ञाः समदर्शिनः।
शौचेन वृत्तशौचार्थास्ते तीर्थाः शुचयश्च ये॥ (महा. अनु. 108/7-8)

जंगमतीर्थ के अन्तर्गत न केवल संत-महात्मा ही आते हैं, अपितु गुरु, माता-पिता आदि सभी आते हैं। नरसिंहपुराण में कहा गया है कि गुरुदेव, माता-पिता की सेवा और स्वधर्म का पालन करना भी तीर्थ है।

गुरुशुश्रूषणं तीर्थं मातृशुश्रूषणं तथा।
स्वधर्माचरणं तीर्थं तीर्थमग्नेरुपासनम्॥ (नरसिंहपुराणम् 67/3)

शास्त्रों में छः प्रकार के जंगमतीर्थों की कल्पना की गयी है। वे क्रमशः इस प्रकार हैं- (1) भक्त-तीर्थ, (2) गुरुतीर्थ, (3) मातातीर्थ, (4) पितातीर्थ, (5) पतितीर्थ तथा (6) पत्नीतीर्थ।

भक्त या साधु-संत(जो आसक्तियों को त्यागकर निरन्तर भगद्चिन्तन में लीन रहते हैं) सबसे श्रेष्ठ जंगमतीर्थ माने गये हैं। गुरुतीर्थ की महिमा का गान करते हुए पद्मपुराण में कहा गया है कि-

दिवा प्रकाशकः सूर्यः शशी रात्रौ प्रकाशकः।
गृहप्रकाशको दीपस्तमोनाशकरः सदा।।
रात्रौ दिवा गृहस्यान्ते गुरुः शिष्यं सदैव हि।
अज्ञानाख्यं तमस्तस्य गुरुः सर्वं प्रणाशयेत्।।
तस्माद गुरुः परं तीर्थं शिष्याणामवनीपते। (पद्मपुराण, भूमिखण्ड 85/12-14)

अर्थात्-सूर्य दिन में प्रकाश करते हैं, चन्द्रमा रात्रि में प्रकाशित होते हैं और दीपक घर में उजाला करता है तथा सदा घर के अँधेरे का नाश करता है; परन्तु गुरु अपने शिष्य के हृदय में रात-दिन सदा ही प्रकाश फैलाते रहते हैं। वे शिष्य के सम्पूर्ण अज्ञानमय अन्धकार का नाश कर देते हैं। अतएव राजन्! शिष्यों के लिये गुरु ही परम तीर्थ है।

अन्यत्र कहा गया है कि -

शिष्याणां परमं पुण्यं धर्मरूपं सनातनम्।
परं तीर्थं परं ज्ञानं प्रत्यक्षफलदायकम्।।

(तीर्थांक, गीताप्रेस, गोरखपुर पृ. 634)

अर्थात्-शिष्यों के लिये गुरु ही परम पुण्य, सनातन धर्म, परम ज्ञान और प्रत्यक्ष फलदायक परम तीर्थ हैं।

इसी प्रकार मातृ-पितृतीर्थ के संदर्भ में गृहस्थों के लिये कहा गया है कि-

नास्ति मातृसमं तीर्थं पुत्राणां च पितुः समम्।
तारणाय हितायैव इहैव च परत्र च।।
वेदैरपि च किं विप्र पिता येन न पूजितः।
माता न पूजिता येन तस्य वेदा निरर्थकाः।।
एष पुत्रस्य वै धर्मस्तथा तीर्थं नरेष्विह।
एष पुत्रस्य वै मोक्षस्तथा जन्मफलं शुभम्।।

(पद्मपुराण, भूमिखण्ड 63/14, 19, 21)

अर्थात्-पुत्रों के इस लोक और परलोक के कल्याण के लिये माता-पिता के समान कोई तीर्थ नहीं है। माता-पिता का जिसने पूजन नहीं किया, उसे वेदों से क्या प्रयोजन है? (उसका वेदाध्ययन

व्यर्थ है) पुत्र के लिये माता-पिता का पूजन ही धर्म है, वही तीर्थ है, वही मोक्ष है और वही जन्म का शुभ फल है।

पतितीर्थ के बारे में कहा गया है कि-

सव्यं पादं स्वभर्तुश्च प्रयागं विद्धि सत्तम।
वामं च पुष्करं तस्य या नारी परिकल्पयेत्।।
तस्य पादोदकस्नानात् तत्पुण्यं परिजायते।
प्रयागपुष्करसमं स्नानं स्त्रीणां न संशयः।।
सर्वतीर्थमयो भर्ता सर्वधर्ममयः पतिः। (पद्मपुराण भूमिखण्ड 41/13-15)

अर्थात्-जो स्त्री अपने पति के दाहिने चरण को प्रयाग और बायें चरण को पुष्कर समझकर पति के चरणोदक से स्नान करती है, उसे उन तीर्थों के स्नान का पुण्य होता है। ऐसा स्नान प्रयाग तथा पुष्कर में स्नान करने के सदृश है, इसमें कोई संदेह नहीं है। पति सर्वतीर्थमय और सर्वधर्ममय है।

पत्नीतीर्थ के बारे में कहा गया है कि-

सदाचारपरा भव्या धर्मसाधनतत्परा।
पतिव्रतरता नित्यं सर्वदा ज्ञानवत्सला।।
एवंगुणा भवेद् भार्या यस्य पुण्या महासती।
तस्य गेहे सदा देवास्तिष्ठन्ति च महौजसः।।
पितरो गेहमध्यस्थाः श्रेयो वाञ्छन्ति तस्य च।
गङ्गाद्याः सरितः पुण्याः सागरास्तत्र नान्यथा।।
पुण्या सती यस्य गेहे वर्तते सत्यतत्परा।
तत्र यज्ञाश्च गावश्च ऋषयस्तत्र नान्यथा।।
तत्र सर्वाणि तीर्थानि पुण्यानि विविधानि च।
नास्ति भार्यासमं तीर्थं नास्ति मार्यासमं सुखम्।
नास्ति भार्यासमं पुण्यं तारणाय हिताय च।।

(पद्मपुराण, भूमिखण्ड 59/11-15, 24)

अर्थात्-जो सब प्रकार से सदाचार का पालन करनेवाली, प्रशंसा के योग्य आचरणवाली, धर्म-साधन में लगी हुई, सदा पातिव्रत्य का पालन करनेवाली तथा ज्ञान की नित्य अनुरागिणी है, ऐसी गुणवती पुण्यमयी महासती जिसके घर में पत्नी हो उसके घर में सदा देवता निवास करते हैं, पितर भी उसके घर में रहकर सदा उसके कल्याण की कामना करते हैं। जिसके घर में ऐसी सत्यपरायणा, पवित्रहृदया सती रहती है, उस घर में गङ्गा आदि पवित्र नदियाँ, समुद्र, यज्ञ, गौएँ, ऋषिगण तथा

सम्पूर्ण विविध पवित्र तीर्थ रहते हैं। कल्याण तथा उद्धार के लिये भार्या के समान कोई तीर्थ नहीं है, भार्या के समान सुख नहीं है और भार्या के समान पुण्य नहीं है।

उपर्युक्त जंगमतीर्थों के विवेचन से शास्त्रों में यह स्पष्ट किया गया है कि ऐसे गृहस्थों को बहुत सोच-समझकर स्थलतीर्थों की यात्रा अथवा अन्य कोई धर्मकार्य करना चाहिये। जिनको कोई खास अड़चन हो, जिनके घर से चले जाने पर(बूढ़े) माता-पिता को कष्ट हो, गुरु को पीड़ा पहुँचती हो, साध्वी पत्नी को संताप और कष्ट होता हो या पत्नी के चले जाने पर श्रेष्ठ पति को दु:ख पहुँचता हो। ऐसे लोग चाहे तो भौमतीर्थों की यात्रा या अन्य धर्मकार्य न करके अपने भाव के अनुसार घर में ही रहकर तीर्थयात्रा या धर्मकार्य का फल प्राप्त कर सकते हैं।

परन्तु उपर्युक्त विवेचन का यह तात्पर्य नहीं है कि गृहस्थों को स्थावर तीर्थों की यात्रा नहीं करनी चाहिये। बात इतनी ही है कि बूढ़े माता-पिता, गुरु, पति और भार्या आदि के पालन-पोषण अथवा सेवारूप कर्त्तव्य से मुँह मोड़कर उन्हें कष्ट पाते छोड़कर किसी भी नर-नारी को यात्रा नहीं करनी चाहिये क्योंकि तीर्थ-यात्रा के समान ही फल तो उनको घर में भी भाव होने पर प्राप्त हो सकता है।

अत: गृहस्थ को माता-पिता, गुरु, पति या पत्नी के साथ अथवा इनकी अनुमति से स्थलतीर्थों की यात्रा या अन्य धर्मकार्य करना चाहिये।

मानसतीर्थ

स्कंदपुराण में लोपामुद्रा के पूछने पर अगस्त्यजी कहते हैं - 'निष्पापे! मैं मानसतीर्थों का वर्णन करता हूँ, सुनो। इन तीर्थों में स्नान करके मनुष्य परमगति को प्राप्त होता है। सत्य, क्षमा, इन्द्रियसंयम, सब प्राणियों के प्रति दया, सरलता, दान, मन का दमन, सन्तोष, ब्रह्मचर्य, प्रियभाषण, ज्ञान, धृति और तपस्या ये प्रत्येक एक-एक तीर्थ हैं। इनमें ब्रह्मचर्य परमतीर्थ है। मन की परम विशुद्धि तीर्थ का भी तीर्थ है। जल में डुबकी मारने का नाम ही स्नान नहीं है; जिसने इन्द्रियसंयमरूप स्नान किया है, वही स्नान है और जिसका चित्त शुद्ध हो गया है, वही पवित्र है।

श‍ृणु तीर्थानि गदतो मानसानि ममानघे।
येषु सम्यङ्नरः स्नात्वा प्रयाति परमां गतिम्।।
सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः।
सर्वभूतदया तीर्थं तीर्थमार्जवमेव च।।
दानं तीर्थं दमस्तीर्थं सन्तोषस्तीर्थमुच्यते।
ब्रह्मचर्यं परं तीर्थं तीर्थं च प्रियवादिता।।
ज्ञानं तीर्थं धृतिस्तीर्थं तपस्तीर्थमुदाहृतम्।
तीर्थानामपि तत्तीर्थं विशुद्धिर्मनसः परा।।

न जलाप्लुतदेहस्य स्नानमित्यभिधीयते।
स स्नातो यो दमस्नातः शुचिः शुद्धमनोमलः।। (स्कं. पु. काशी. पू. 6/29-33)

'जो लोभी है, चुगलखोर है, निर्दय है, दम्भी है और विषयों में फँसा है, वह सारे (भौम) तीर्थों में भलीभाँति स्नान कर लेने पर भी पापी और मलिन ही है। शरीर का मैल उतारने से ही मनुष्य निर्मल नहीं होता; मन के मल को निकाल देने पर ही भीतर से सुनिर्मल होता है। जलजन्तु जल में ही पैदा होते हैं और जल में ही मरते हैं, परंतु वे स्वर्ग में नहीं जाते; क्योंकि उनका मन का मैल नहीं धुलता। विषयों में अत्यन्त राग ही मन का मैल है और विषयों से वैराग्य को ही निर्मलता कहते हैं। चित्त अन्तर की वस्तु है, उसके दूषित रहने पर केवल (भौम) तीर्थस्नान से शुद्धि नहीं होती। शराब के भाण्ड को चाहे सौ बार जल से धोया जाय, वह अपवित्र ही रहता है; वैसे ही जबतक मन का भाव शुद्ध नहीं है, तबतक उसके लिये दान, यज्ञ, तप, शौच, तीर्थसेवन और स्वाध्याय-सभी अतीर्थ हैं। जिसकी इन्द्रियाँ संयम में हैं, वह मनुष्य जहाँ रहता है, वहीं उसके लिये कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य और पुष्करादि तीर्थ विद्यमान हैं। ध्यान से विशुद्ध हुए, रागद्वेषरूपी मल का नाश करनेवाले ज्ञान-जल में जो स्नान करता है, वही परमगति को पाता है।'

यो लुब्धः पिशुनः क्रूरो दाम्भिको विषयात्मकः।
सर्वतीर्थेष्वपि स्नातः पापो मलिन एव सः।।
न शरीरमलत्यागान्नरो भवति निर्मलः।
मानसे तु मले त्यक्ते भवत्यन्तःसुनिर्मलः।।
जायन्ते च म्रियन्ते च जलेष्वेव जलौकसः।
न च गच्छन्ति ते स्वर्गमविशुद्धमनोमलाः।।
विषयेष्वतिसंरागो मानसो मल उच्यते।
तेष्वेव हि विरागोऽस्य नैर्मल्यं समुदाहृतम्।।
चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानान्न शुद्ध्यति।
शतशोऽपि जलैर्धौतं सुराभाण्डमिवाशुचिः।।
दानमिज्या तपः शौचं तीर्थसेवा श्रुतं यथा।
सर्वाण्येतान्यतीर्थानि यदि भावो न निर्मलः।।
निगृहीतेन्द्रियग्रामो यत्रैव च वसेन्नरः।
तत्र तस्य कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्कराणि च।।
ध्यानपूते ज्ञानजले रागद्वेषमलापहे।
यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमां गतिम्।।

(स्कंदपुराण, काशीखं. पू. 6/34-41)

नरसिंहपुराण में कहा गया है कि मानसतीर्थ विशेष फल देनेवाले होते हैं। वास्तव में राग-द्वेषादि से रहित मन की स्वच्छता ही उत्तम तीर्थ है। सत्य, दया, इन्द्रियनिग्रह परम उत्तम तीर्थ हैं।

मानसानि हि तीर्थानि फलदानि विशेषतः।।
मनोनिर्मलता तीर्थं रागादिभिरनाकुला।
सत्यं तीर्थं दया तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः।। (नरसिंहपुराणम् 67/1-2)

महाभारत में मानसतीर्थ की चर्चा करते हुए बताया गया है कि जिसमें धैर्यरूप कुण्ड और सत्यरूप जल भरा हुआ है तथा जो अगाध, निर्मल एवं अत्यन्त शुद्ध है, उस मानसतीर्थ में सदा परमात्मा का आश्रय लेकर स्नान करना चाहिये। कामना और याचना का अभाव, सरलता, सत्य, मृदुता, अहिंसा, समस्त प्राणियों के प्रति क्रूरता का अभाव-दया, इन्द्रियसंयम और मनोनिग्रह-ये ही इस मानसतीर्थसेवन से प्राप्त होनेवाली पवित्रता के लक्षण हैं।

अगाधे विमले शुद्धे सत्यतोये धृतिह्रदे।
स्नातव्यं मानसे तीर्थे सत्त्वमालम्ब्य शाश्वतम्।।
तीर्थशौचमनर्थित्वमार्जवं सत्यमार्दवम्।
अहिंसा सर्वभूतानामानृशंस्यं दमः शमः।। (महाभा. अनुशा. 108/3-4)

पुनः कहा गया है कि जो प्रसन्न एवं शुद्ध मन से ब्रह्मज्ञानरूपी जल के द्वारा मानसतीर्थ में स्नान करता है, उसका वह स्नान ही तत्त्वदर्शी ज्ञानी का स्नान माना गया है।

मनसा च प्रदीप्तेन ब्रह्मज्ञानजलेन च।
स्नाति यो मानसे तीर्थे तत्स्नानं तत्त्वदर्शिनः।। (महा. अनु. 108/13)

स्थावर अथवा भौमतीर्थ

सामान्यतः उस नदी, सरोवर, मन्दिर अथवा भूमि को स्थावरतीर्थ कहा जाता है, जहाँ ऐसी दिव्यशक्ति हो कि उसके सम्पर्क में (स्नान-दर्शनादि के द्वारा) आने पर मनुष्य के पाप अज्ञातरूप से नष्ट हो जाते हैं।

स्कंदपुराण में लोपामुद्रा को अगस्त्यजी मानसतीर्थों के बाद पृथ्वी पर स्थित तीर्थों के बारे में बतलाते हुए कहते हैं कि जैसे शरीर के कुछ अंग अत्यन्त पवित्र माने गये हैं, उसी प्रकार पृथ्वी के कुछ भाग अत्यन्त पुण्यमय हैं। पृथ्वी के अद्‌भुत प्रभाव, जल के विलक्षण तेज तथा मुनियों के निवासथान होने से तीर्थ पुण्यस्वरूप माने जाते हैं। (स्कं. पु. काशीख. पू. अध्याय 6)

प्रभावादद्भुताद् भूमेः सलिलस्य च तेजसा।
परिग्रहान्मुनीनां च तीर्थानां पुण्यता मता।। (स्कं. पु. का. ख. पू. 6/44)

महाभारत में भी भीष्मजी युद्धिष्ठिर से स्थावरतीर्थों के बारे में अगस्त्यजी की तरह से कहते

हैं कि जैसे शरीर के विभिन्न स्थान पवित्र बताये गये हैं, उसी प्रकार पृथ्वी के भिन्न-भिन्न भाग भी पवित्र तीर्थ हैं और वहाँ का जल पुण्यदायक है। पृथ्वी के कुछ भाग साधु-पुरुषों के निवास से तथा स्वयं पृथ्वी और जल के तेज से अत्यन्त पवित्र माने गये हैं।

शरीरस्य यथोद्देशाः शुचयः परिकीर्तिताः।
तथा पृथिव्या भागाश्च पुण्यानि सलिलानि च।।
परिग्रहाच्च साधूनां पृथिव्याश्चैव तेजसा।
अतीव पुण्यभागास्ते सलिलस्य च तेजसा।। (महाभा. अनु. पर्व 108/16, 18)

भौमतीर्थों की अनगिनत संख्या है जिनमें से काशी, मथुरा, प्रयाग, हरिद्वार, काँची, बद्रीनाथ, कुरुक्षेत्र, पुष्कर, गया, रामेश्वर, पुरी, एवं द्वारिका आदि तीर्थ बहुत ही प्रसिद्ध हैं। सभी प्रकार के भौमतीर्थों को तीन प्रकार का माना जा सकता है- (1) नित्यतीर्थ, (2) भगवदीयतीर्थ तथा (3) संततीर्थ।

नित्यतीर्थ- कैलास, मानसरोवर, काशी आदि नित्यतीर्थ हैं। सृष्टि के प्रारंभ से यहाँ की भूमि में दिव्य पावनकारिणी शक्ति है। इसी प्रकार गंगा, यमुना, रेवा(नर्मदा), कावेरी आदि पुण्यसरिताएँ भी नित्यतीर्थ हैं।

भगवदीयतीर्थ- जहाँ भगवान् का अवतार हुआ, जहाँ उन्होंने कोई लीला की अथवा जहाँ उन्होंने किसी भक्त को दर्शन दिये, वे भगवदीय तीर्थ हैं। भगवान् नित्य हैं, चिन्मय हैं। जिस स्थल में उनके श्रीचरण कभी पड़े, वह भूमि दिव्य हो गयी। उसमें प्रभु के चरणारविन्द का चिन्मय प्रभाव आ गया और वह प्रभाव काल द्वारा प्रभावित नहीं होता। वह प्रभाव सदैव बना रहता है।

संततीर्थ- जो जीवनमुक्त, देहातीत, परमभागवत या भगवत्प्रेम में तन्मय संत हैं, उनका शरीर भले पाञ्चभौतिक एवं नश्वर हो; किंतु उस देह में भी संत के दिव्य गुण ओतप्रोत हैं। उस देह से उन दिव्य गुणों के परमाणु सदा बाहर निकलते रहते हैं और अपने संपर्क में आनेवाली वस्तुओं को प्रभावित करते रहते हैं। इसलिये संत के चरण जहाँ-जहाँ पड़ते हैं वे भूमिखण्ड तीर्थ बन जाते हैं। संत की जन्मभूमि, उसकी साधनाभूमि और उसकी निर्वाण(देहत्याग)-भूमि एवं समाधि विशेष रूप से पवित्र हैं।

तीर्थसेवन का प्रयोजन

मनुष्य-जीवन का उद्देश्य है-भगवत्प्राप्ति या भगवत्प्रेम की प्राप्ति। जगत् में भगवान् को छोड़कर सब कुछ नश्वर है, दुःखदायी है। संसार से मन हटकर भगवान् में लग जाय-मनुष्य को बस यही करना है। यह होता है भगवत्प्रेमी महात्माओं के संग से और ऐसे महात्मा रहा करते हैं पवित्र तीर्थों में। इसीलिये शास्त्रों ने तीर्थयात्रा को इतना महत्त्व दिया है। स्कंदपुराण (माहे. कुमा. 11/11) में कहा गया है कि -

तीर्थयात्रा के प्रसंग से महापुरुषों के दर्शन के लिये जाना ही यात्रा का प्रधान उद्देश्य है। जिस भूभाग में संत - महात्मा निवास करते हैं, वही 'तीर्थ' कहलाता है।

पद्मपुराण में कहा गया है कि भगवान् का ज्ञान होता है पापरहित साधुसंग करने से; साधु वे ही हैं जिनकी कृपा से मनुष्य संसार के दुःख से छुटकारा पा जाते हैं। काम और लोभ से रहित तथा वीतराग साधुपुरुष जिस विषय का उपदेश देते हैं, वह संसारबन्धन की निवृत्ति करनेवाला होता है। तीर्थों में श्रीरामचन्द्रजी (भगवान्) के भजन में लगे हुए साधु - पुरुष मिलते हैं, जिनका दर्शन मनुष्यों की पापराशि को भस्म करने के लिये अग्नि का काम देता है, इसलिये संसार - बन्धन से डरे हुए मनुष्यों को पवित्र जलवाले तीर्थों में, जो सदा साधु - महात्माओं के सहवास से सुशोभित रहते हैं, अवश्य जाना चाहिये।

स हरिर्ज्ञायते साधुसंगमात् पापवर्जितात्।
येषां कृपातः पुरुषा भवन्त्यसुखवर्जिताः।।
ते साधवः शान्तरागाः कामलोभविवर्जिताः।
ब्रुवन्ति यन्महाराज तत् संसारनिवर्तकम्।।
तीर्थेषु लभ्यते साधू रामचन्द्रपरायणः।
यद्दर्शनं नृणां पापराशिदाहाशुशुक्षणिः।।
तस्मात् तीर्थेषु गन्तव्यं नरैः संसारभीरुभिः।
पुण्योदकेषु सततं साधुश्रेणिविराजिषु।। (पद्मपुराण, पातालखण्ड 19 / 14 - 17)

महाभारत में कहा गया है कि तीर्थाटन - तीर्थाभिगमन यज्ञों से भी बड़ा है। बहुत से उपकरणों तथा नाना प्रकार के विस्तृत सम्भारों से सम्पन्न होनेवाले यज्ञ दरिद्रों द्वारा कैसे शक्य हैं? पर ऋषियों का यह परम गुह्य मत है कि दरिद्र व्यक्ति तीर्थयात्रा से जो फल पाता है, वह अग्निष्टोम आदि यज्ञों द्वारा भी दूसरों को सुलभ नहीं।

ऋषीणां परमं गुह्यमिदं भरतसत्तम।
तीर्थाभिगमनं पुण्यं यज्ञैरपि विशिष्यते।।
अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्ट्वा विपुलदक्षिणैः।
न तत् फलमवाप्नोति तीर्थाभिगमनेन यत्।। (महाभारत, वनपर्व, 82 / 17, 19)

पद्मपुराण में एक स्थल पर कहा गया है कि तीर्थों का दर्शन करना, उनमें स्नान करना, वहाँ जाकर बार - बार डुबकी लगाना मनोवांछित फल को देनेवाले हैं। पर्वत, नदियाँ, क्षेत्र, आश्रम और मानस आदि सरोवर - सभी तीर्थ कहे गये हैं, जिनमें तीर्थयात्रा के उद्देश्य से जानेवाले पुरुष को पग - पग पर अश्वमेध आदि यज्ञों का फल होता है - इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। (संक्षिप्त पद्मपुराण, गीताप्रेस, पृ. 91)

विष्णुस्मृति में बतलाया गया है कि महापातकी तथा उपपातकी-सभी तीर्थानुसरण से शुद्ध हो जाते हैं।

अनुपातकिनस्त्वेते महापातकिनो यथा।
अश्वमेधेन शुद्ध्यन्ति तीर्थानुसरणेन च।।

(विष्णुस्मृति 36/8 तीर्थांक पृ. 614 पर उद्धृत)

अर्थात् उपपातकी एवं महापातकी या तो अश्वमेध यज्ञ से अथवा तीर्थानुसरण से शुद्ध होता है।

तीर्थसेवन से न केवल पापों से छुटकारा एवं स्वर्ग की प्राप्ति होती है अपितु मोक्ष भी प्राप्त हो सकता है। मोक्ष देनेवाली काशी, मथुरा, हरिद्वार, काँची, द्वारका आदि सात पुरियाँ प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार गंगा, यमुना, नर्मदा तथा गोदावरी आदि नदियाँ भी सेवन किये जाने पर मोक्ष प्रदान कर सकती हैं।

तीर्थों का माहात्म्य शास्त्रों में सर्वत्र भरा पड़ा है। न केवल पुराणों में अपितु वेदों, उपनिषदों, रामायण एवं महाभारत आदि सभी ग्रन्थों में तीर्थ का माहात्म्य स्वीकार किया गया है। यहाँ पर स्थानाभाव से थोड़े से संदर्भ ही दिये गये हैं।

तीर्थयात्रा के फल का अधिकारी

कई लोग भौमतीर्थों के माहात्म्य के वचनों को अर्थवाद एवं रोचक मानते हैं, किन्तु इनको शास्त्रों ने अर्थवाद स्वीकार न करके यथार्थ माना है। परन्तु तीर्थ का पूरा फल लेने के लिये शास्त्रों ने तीर्थसेवनसंबंधी कुछ नियम एवं शर्तें निर्धारित कर रक्खा है। उन शर्तों के अधीन अगर तीर्थसेवन किया जाय तो तीर्थ का पूरा फल मिलता है। तीर्थसेवन के शर्तों का उल्लेख लगभग सभी ग्रन्थों में पाया जाता है। उदाहरण के लिये महाभारत(वनपर्व 82/9-12, अनुशासनपर्व 25/65), देवीभागवत(6/अध्याय 3), पद्मपुराण(पातालखण्ड 19/24), ब्रह्मपुराण(25/2-6), नारदमहापुराण(उत्तरभाग अध्याय 62), शिवपुराण(विद्येश्वरसंहिता 12/5, 7, 35-36, 38, 43) तथा स्कंदपुराण(काशीखण्ड, पूर्वार्ध, 6/48-70, माहेश्वरखण्ड, कुमा. 2/6, अवन्तिखण्ड, आव. मा. 7/32-33) इत्यादि। अब हम तीर्थ के फल के अधिकारी की चर्चा विस्तार से करेंगे। यह चर्चा उपर्युक्त सभी सन्दर्भों का सार मानी जा सकती है।

स्कंदपुराण में अगस्त्यजी लोपामुद्रा से कहते हैं कि-

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते।।
प्रतिग्रहादुपावृत्तः संतुष्टो येन केनचित्।
अहंकारविमुक्तश्च स तीर्थफलमश्नुते।।

अदम्भको निरारम्भो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः।
विमुक्तः सर्वसङ्गैर्यः स तीर्थफलमश्नुते।।
अकोपनोऽमलमतिः सत्यवादी दृढव्रतः।
आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नुते।। (स्क. पु. काशी. पूर्वा. 6/48-51)

अर्थात्-'जिसके हाथ, पैर और मन भलीभाँति संयमित हैं-अर्थात् जिसके हाथ सेवा में लगे हों, पैर तीर्थादि भगवत्-स्थानों में जाते हों और मन भगवान् के चिन्तन में संलग्न हो, जिसको अध्यात्मविद्या प्राप्त हो, जो धर्मपालन के लिये कष्ट सहता हो तथा जो भगवान् की दासतारूपी कीर्ति से सम्पन्न हो, वही तीर्थ के फल को प्राप्त करता है। जो प्रतिग्रह नहीं लेता, जो अनुकूल या प्रतिकूल-जो कुछ भी मिल जाय, उसी में संतुष्ट रहता है तथा जिसमें अहंकार का सर्वथा अभाव है, वह तीर्थ के फल को प्राप्त करता है। जो पाखण्ड नहीं करता, नये-नये कर्मों को आरम्भ नहीं करता, थोड़ा आहार करता है, इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर चुका है, सब प्रकार की असक्तियों से छूटा हुआ है, वह तीर्थ के फल का भागी होता है। जिसमें क्रोध नहीं है, जिसकी बुद्धि निर्मल है, जो सत्य बोलता है, व्रत-पालन में दृढ़ है और सब प्राणियों को अपने आत्मा के समान अनुभव करता है, वह तीर्थ के फल को प्राप्त करता है।'

तीर्थान्यनुसरन् धीरः श्रद्दधानः समाहितः।
कृतपापो विशुद्ध्येत किं पुनः शुद्धकर्मकृत्।।
अश्रद्दधानः पापात्मा नास्तिकोऽछिन्नसंशयः।
हेतुनिष्ठश्च पञ्चैते न तीर्थफलभागिनः।। (वही 6/52, 54)

अर्थात्-'जो तीर्थों का सेवन करनेवाला धैर्यवान्, श्रद्धायुक्त और एकाग्रचित है, वह पहले का पापाचारी हो तो भी शुद्ध हो जाता है; फिर जो शुद्ध कर्म करनेवाला है, उसकी तो बात ही क्या है। श्रद्धाहीन, पापात्मा(तीर्थ में पापी की-पाप करनेवाले की शुद्धि होती है पर जिसका स्वभाव ही पापमय है, उस पापात्मा की नहीं होती), नास्तिक, सन्देहशील और हेतुवादी(केवल तर्क का सहारा लेनेवाला)- इन पाँचों को तीर्थफल की प्राप्ति नहीं होती।'

कामं क्रोधं च लोभं च यो जित्वा तीर्थमाविशेत्।
न तेन किंचिदप्राप्तं तीर्थाभिगमनाद् भवेत।।[1]
तीर्थानि च यथोक्तेन विधिना संचरन्ति ये।
सर्वद्वन्द्वसहा धीरास्ते नराः स्वर्गगामिनः।।
गङ्गादितीर्थेषु वसन्ति मत्स्या देवालये पक्षिगणाश्च सन्ति।

1. यही श्लोक नगण्य अन्तर के साथ महाभारत(अनुशा. प. 25/65) में भी पाया जाता है।

भावोज्झितास्ते न फलं लभन्ते तीर्थाच्च देवायतनाच्च मुख्यात्।।
भावं ततो हृत्कमले निधाय तीर्थानि सेवेत समाहितात्मा।

(नारदमहापु., उत्तरभाग, अध्याय 62)

अर्थात्–'जो काम, क्रोध और लोभ को जीतकर तीर्थ में प्रवेश करता है, उसे तीर्थयात्रा से कोई भी वस्तु अलभ्य नहीं रहती। जो यथोक्त विधि से तीर्थयात्रा करते हैं, सम्पूर्ण द्वन्द्वों को सहन करनेवाले वे धीर पुरुष स्वर्ग में जाते हैं। गंगादि तीर्थों में मछलियाँ निवास करती हैं। देवमन्दिरों में पक्षीगण रहते हैं; किन्तु उनके चित्त भक्तिभाव से रहित होने के कारण उन्हें तीर्थसेवन और देवमंदिर में निवास करने से कोई फल नहीं मिलता। अतः हृदयकमल में भाव का संग्रह करके एकाग्रचित्त होकर तीर्थसेवन करना चाहिये।

स्कंदपुराण में ही एक अन्य स्थल पर भगवान् शंकर स्कंदजी से कहते हैं कि–

ये तत्र चपलास्तथ्यं न वदन्ति च लोलुपाः।
परिहासपरद्रव्यपरस्त्रीकपटाग्रहाः।।
मलचैलावृताशान्ताशुचयस्त्यक्तसत्क्रियाः।
तेषां मलिनचित्तानां फलमत्र न जायते।। (संक्षिप्त स्कं. पु. वैष्ण. बदरि. 6/69-70)

अर्थात्–'जो चंचल बुद्धि हैं, लोभी हैं और तथ्य की बात नहीं कहते हैं(अर्थात् असत्य बोलनेवाले हैं), जिनके मन में परिहास, परधन और परस्त्री की इच्छा है तथा जिसका कपटपूर्ण आग्रह है, जो दूषित वस्त्र पहनते हैं, जो अशान्त, अपवित्र और सत्कर्मों के त्यागी हैं, उन मलिन-चित्त मनुष्यों को तीर्थ से कोई फल नहीं मिलता।'

तीर्थों में किस प्रकार रहना चाहिये? इसे बताते हुए कहा गया है कि '(इस क्षेत्र में वास करनेवाले) ममतारहित, अहंकाररहित, आसक्तिरहित, परिग्रह से शून्य, बन्धु-बान्धवों में स्नेह न रखनेवाले, मिट्टी, पत्थर और सोने में समान बुद्धि रखनेवाले, मन, वाणी और शरीर के द्वारा किये जानेवाले त्रिविधि कर्मों से सदा सब प्राणियों को अभय देनेवाले, सांख्य और योग की विधि को जाननेवाले, धर्म के स्वरूप को समझनेवाले और संशय-संदेह से रहित हों।'

निर्ममा निरहङ्कारा निःसङ्गा निष्परिग्रहाः।
बन्धुवर्गेण निःस्नेहाः समलोष्ठाश्मकाञ्चनाः।।
भूतानां कर्मभिर्नित्यं त्रिविधैरभयप्रदाः।
सांख्ययोगविधिज्ञाश्च धर्मज्ञाश्छिन्न संशयाः।।

(संक्षिप्त स्क. पु. अवन्ति. आव. मा. 7/32-33)

सभी पापों की शुद्धि और भगवान् के रहस्य को जानकर उनकी अविचल स्मृति बने रहना

अथवा भगवान् की भक्ति की प्राप्ति ही तीर्थों का वास्तविक फल है।[1] तीर्थयात्रा करने पर भी यदि ऐसा न हुआ हो तो तीर्थयात्रा राजसी-तामसी होने के कारण निष्फल समझी जाती है-

निष्पापत्वं फलं विद्धि तीर्थस्य मुनिसत्तम।
कृषेः फलं यथा लोके निष्पन्नान्नस्य भक्षणम्।।

(देवीभाग. 8/8/22 तीर्थांक पृ. 619 से उद्धृत)

काम, क्रोध, लोभ, मोह, तृष्णा, द्वेष, राग, मद, असूया, ईर्ष्या, अक्षमा, अशान्ति-ये यदि देह से न निकल सके तो कैसी शुद्धि, कैसी तीर्थयात्रा? उसका श्रम तो निष्फल ही हुआ।

कृते तीर्थे यदैतानि देहान्न निर्गतानि चेत्।
निष्फलः श्रम एवैकः कर्षकस्य यथा तथा।।

(देवीभाग. 8/8/22 तीर्थांक पृ. 619 से उद्धृत)

जबतक ऊपर के नियमों का पालन न किया जाय तबतक तीर्थसेवन से काम और क्रोधादि विकार दूर नहीं हो सकते। ऊपर यह भी बताया गया है कि तीर्थ का फल श्रद्धारहित को प्राप्त नहीं होता। कहा गया है कि तीर्थ, मन्त्र, ब्राह्मण, देवता, ओषधि, गुरु तथा ज्योतिषी में जिनकी जैसी श्रद्धा होती है, तदनुसार ही फल मिलता है।

मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ।
यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।।

(वीरमि. तीर्थप्रकाश, पृ. 14, तीर्थांक पृ. 618 से उद्धृत)

आजकल तीर्थों में लोगों की अश्रद्धा बढ़ती जा रही है। जैसे भगवत्परायण भजनानन्दी महापुरुषों ने अपने पुण्य-बल से तीर्थों को तीर्थ बनाया था वैसे ही आजकल पापाचारी दाम्भिक लोगों ने उन्हें नष्ट-भ्रष्ट करना आरम्भ कर दिया है। आजकल प्रसिद्ध-प्रसिद्ध तीर्थों पर जो पापकाण्ड होते हैं, वे बड़े ही भयानक और रोमांचकारी हैं। अत: वर्तमान नास्तिक वातावरण, पण्डे और पुजारियों के दुर्व्यवहार तथा तीर्थों में पाखंडी, नास्तिक और भयानक और क्रूर कर्म करनेवालों के निवास आदि से लोगों में तीर्थों के प्रति श्रद्धा एवं विश्वास उठता जा रहा है।

जंगम, मानस एवं भौमतीर्थों का संबंध

जिस प्रकार अनेक भौमतीर्थ हैं उसी प्रकार जंगम एवं मानसतीर्थ भी अनेक हैं। जंगम-तीर्थों का वर्गीकरण करते हुए कहा गया था कि संत आदि ये छः प्रकार के होते हैं। इनमें से उपलब्ध किसी भी एक अथवा अनेक तीर्थों का मनोयोगपूर्वक सेवन करने से उद्धार हो सकता है। इसी प्रकार मानस

1. तीर्थाटन साधन समुदाई। विद्या विनय विवेक बड़ाई।
जहँ लगि साधन बेद बखानी। सब कर फल हरि भगति भवानी।।(रामचरितमानस, उत्तर. 125ख/2-4)

तीर्थों, सत्य, क्षमा, इन्द्रियनिग्रह, दया, दान, मन का संयम, ब्रह्मचर्य, ज्ञान, तप आदि में से किसी एक अथवा अनेक का सम्यक् सेवन व्यक्ति को परमपदतक पहुँचा सकता है। इसी प्रकार भौमतीर्थों में से किसी एक या अनेक तीर्थों के सेवन से व्यक्ति को परम लाभ पहुँच सकता है।

जैसा हम ऊपर देख चुके हैं कि भौमतीर्थों के सेवन का पूरा फल तभी प्राप्त होता है जब हम तीर्थ-सेवन की शर्तों को पूरा करें। इन शर्तों में मन का संयम, ज्ञान, संतोष, इन्द्रियनिग्रह, ब्रह्मचर्य आदि आते हैं। दूसरे शब्दों में मानसिक तीर्थों के सेवन के बगैर केवल भौमतीर्थों का सेवन किया जाय तो वे फलदायी नहीं होते। इसी प्रकार जंगमतीर्थों के प्रसंग में कहा जा चुका है कि माता-पिता, गुरु, पति एवं पत्नी की अनुमति के बिना तीर्थयात्रा निष्फल होती है। इसी प्रकार यह भी बतलाया जा चुका है कि संत-महात्माओं के सत्संग को प्राप्त करने के लिये भौमतीर्थों में जाना चाहिये। इन सब विवेचनों से यह सिद्ध होता है कि जंगम, मानस एवं भौमतीर्थों में आपसी संबंध है। वास्तव में ये तीनों तीर्थ एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। इन सब में मानसतीर्थों का सेवन भौमतीर्थों एवं जंगमतीर्थों के फल को पाने के लिये अनिवार्य शर्त है। जंगमतीर्थ का हम भली प्रकार सेवन तभी कर सकते हैं जब हम पहले ही कुछ प्रकार के मानसिकतीर्थों का सेवन कर चुके हों। उदाहरण के लिये इन्द्रिय एवं मन का निग्रह, ज्ञान, धैर्य तथा तपरूपी तीर्थों के सेवन के बिना न तो संत-साधु का सत्संग किया जा सकता है, न माता-पिता, गुरु, पति या पत्नी की सेवा एवं आज्ञापालन ही संभव है। इसी प्रकार स्थावरतीर्थों के सेवन के लिये भी इन मानसिकतीर्थों का पहले सेवन करना अनिवार्य है। अतः मानसिकतीर्थों को सर्वोच्च तीर्थ कह सकते हैं।

यहाँ पर एक प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि अगर कोई उच्चतम मानसिकतीर्थ जैसे इन्द्रिय एवं मन का संयम, सत्य और दया का वह पहले ही सेवन कर चुका है तो उसे जंगम या भौमतीर्थों के सेवन की क्या आवश्यकता है? सच तो यह है कि अगर व्यक्ति इन मानसतीर्थों में भली प्रकार स्नान कर चुका है तो उसे अन्य तीर्थ की आवश्यकता नहीं है। परन्तु सिद्धान्त में यह बात सत्य होते हुए भी व्यवहार में ऐसा संभव नहीं है कि व्यक्ति में उपर्युक्त मानसिक गुण पूर्णरूपेण बिना किसी अन्य साधन के आ जायँ। दूसरे शब्दों में उल्लिखित मानसिक गुणों में वृद्धि तथा उसे दृढ़ करने के लिये अन्य साधनों की आवश्यकता है। अन्य साधनों के अन्तर्गत कुछ प्रकार के जंगमतीर्थों का सेवन आता है। जैसे गुरु, संत-महात्माओं का सत्संग आदि। गुरु एवं संत-महात्मा आमतौर पर लोगों को घर बैठे ही प्राप्त नहीं हो जाते। उसके लिये उन्हें भौमतीर्थों का सेवन करना पड़ता है। भौमतीर्थों में संत-महात्मा तथा ज्ञानी महापुरुष निवास करते हैं। जैसा पहले ही बताया जा चुका है कि भौमतीर्थों के सेवन का मुख्य लक्ष्य संतों का समागम करना, गुरुओं की खोज करना तथा उनसे लाभ उठाना है। पुनः भौमतीर्थों की अपनी अलग महत्ता भी है।

जब व्यक्ति मानसिक तीर्थों के सेवनपूर्वक भौमतीर्थों में विचरण करता है तो उसका मन तीर्थों के जल के तथा पुण्य-स्थानों के पवित्र आध्यात्मिक सूक्ष्म स्पंदनों से प्रभावित होकर मानसिक सद्‌गुणों को विकसित करता है, पवित्रता को हासिल करता है फलस्वरूप उसके मन का मैल छूटने लगता है। अत: स्थल-तीर्थों में न केवल साधु-पुरुषों के समागम का लाभ पहुँचता है अपितु वे रहस्यमय ढंग से आध्यात्मिक दृष्टि से संवेदनशील लोगों को मानसिक पवित्रता भी प्रदान करते हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि तीनों प्रकार के तीर्थ एक दूसरे के पूरक हैं। परन्तु एक दूसरे के पूरक होते हुए भी वे अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखते हैं।

महाभारत में कहा गया है कि-

मनसश्च पृथिव्याश्च पुण्यास्तीर्थास्तथापरे।
उभयोरेव यः स्नायात् स सिद्धिं शीघ्रमाप्नुयात्॥

(महाभा. अनुशासनपर्वणि 108/19)

अर्थात्-इस प्रकार पृथ्वी पर और मन में भी अनेक पुण्यमय तीर्थ हैं। जो इन दोनों प्रकार के तीर्थों में स्नान करता है, वह शीघ्र ही परमात्म-प्राप्तिरूप सिद्धि प्राप्त कर लेता है।

स्कंदपुराण में भी यही बात कही गयी है। 'जो प्रतिदिन भूमण्डल के तीर्थों और मानसतीर्थों में स्नान करता है, वह परमगति को प्राप्त होता है(स्क. पु. काशीखण्ड, पूर्वार्ध 6/47)। भौमतीर्थों में मानसतीर्थ के साथ-साथ संत-महात्माओं के सत्संग का लाभ उठाते हुए जंगमतीर्थ का भी सेवन करे। परन्तु कांचन-कामिनी के लोलुप अपने नाम-रूप को पुजवाकर लोगों को अपना उच्छिष्ट(जूँठन) खिलानेवाले, मान, बड़ाई और प्रतिष्ठा के गुलाम, प्रमादी और विषयासक्त पुरुषों का संग भूलकर भी नहीं करना चाहिये, चाहे वे साधु, ब्रह्मचारी या तपस्वी के वेश में ही क्यों न हों।

तीर्थों में किसी-किसी स्थान पर पण्डे-पुजारी और महन्त आदि यात्रियों को अनेक प्रकार से तंग किया करते हैं। यात्रा सफल करवाने के नाम पर दुराग्रहपूर्वक अधिक धन लेने के लिये अड़ जाना, देव-मंदिरों में बिना पैसे लिये दर्शन न कराना, बिना भेंट लिये स्नान न करने देना, यात्रियों को धमकाकर और पाप का भय दिखलाकर जबर्दस्ती रूपये ऐंठना, मंदिरों और तीर्थों पर भोग-भंडारे आदि के नाम पर अधिक भेंट चढ़ाने के लिये अनुचित दबाव डालना, अपने स्थानों पर ठहराकर अधिक धन प्राप्त करने का प्रयत्न करना, सफेद चील(काँक) पक्षियों को ऋषि और देवता का रूप देकर और उनकी जूँठन खिलाकर भोले-भाले यात्रियों से धन ठगना तथा देवमूर्तियों के द्वारा शर्बत पिये जाने आदि झूठी करामातों को प्रसिद्ध करके लोगों को ठगना इत्यादि-इत्यादि चेष्टाएँ इसी ढंग की हैं। अत: तीर्थयात्रियों को इन सबसे सावधान रहकर ही भौमतीर्थों में सही जंगमतीर्थों के सत्संग का लाभ उठाना चाहिये। इसी प्रकार कुसंग से बचकर तीर्थों में श्रद्धा-प्रेम रखते हुए सावधानी के साथ महापुरुषों का संग और यम-नियमों(मानसतीर्थों) का भली-भाँति पालन करके तीर्थों से लाभ उठाना चाहिये।

तीर्थयात्रा की विधि एवं तीर्थ में पालनीय नियम

स्कंदपुराण में कहा गया है कि 'जो क्रोध, लोभ और इन्द्रियों को जीत चुके हैं, और मात्सर्य से रहित, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कोई भी क्यों न हो, यदि सद्भाव से भावित हो उत्तम व्रत का पालन करते हुए तीर्थसेवन करते हैं तो उनके हित के लिये मैं(भगवान् शंकर) त्रिभुवन विख्यात सर्वोत्तम प्रभासक्षेत्र का ही नाम लेता हूँ।' प्रभास की महिमापरक इस कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि चारों वर्गों के लोगों को तीर्थयात्रा का अधिकार है(देखें संक्षिप्त स्कंदपुराणांक, प्रभासखण्ड, गीताप्रेस, गोरखपुर पृ. 950)। इसी पुराण में आगे स्पष्ट रूप से कहा गया है कि 'सभी वर्णों और आश्रमों के लोगों को तीर्थयात्रा फल देनेवाली होती है।[1] (संक्षिप्त स्कंदपुराणांक, प्रभासखण्ड अ. 26 पृ. 969)

निर्णयसिन्धुः में कहा गया है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र तीर्थ में स्नान करने पर निन्दित योनि में जन्म नहीं ग्रहण करते।

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा राजसत्तम।
न वियोनिं व्रजन्त्येते स्नानात्तीर्थे महात्मनः।। (निर्णयसिन्धुः प. 1016)

तीर्थयात्रा में जानेवाले व्यक्ति को चाहिये कि वह पहले अपने घर पर ही पवित्र हो, उपवास कर गणेशजी की तथा अन्य देवता, पितर, ब्राह्मण, साधु आदि की यथाशक्ति धनादि से पूजा कर शुभ मुहूर्त में यात्रा आरम्भ करे। तीर्थ से लौटने पर भी पुनः ये कृत्य करने चाहिये। ऐसा करने से निःसंदेह उसे शास्त्रोक्त फल की प्राप्ति होती है।

यो यः कश्चित्तीर्थयात्रां तु गच्छेत् सुसंयतः स तु पूर्वं गृहे स्वे।
कृतोपवासः शुचिरप्रमतः सम्पूजयेद् भक्तिनम्रो गणेशम्।।
देवान् पितॄन् ब्राह्मणांश्चैव साधून् धीमान् विप्रो वित्तशक्त्या प्रयत्नात्।
प्रत्यागतश्चापि पुनस्तथैव देवान् पितॄन् ब्राह्मणान् पूजयेच्च।।
एवं कुर्वतस्तस्य तीर्थाद् यदुक्तं फलं तत् स्यान्नात्र संदेहमस्ति।

(नारदमहापुराण अध्याय 62 तथा तीर्थांक पृ. 615)

स्कंदपुराण(काशीखं. पूर्वा. 6/56-57) में भी उपर्युक्त बातों के अलावा कहा गया है कि पारण करके हर्षित चित्त से संयम-नियम का पालन करता हुआ तीर्थ में जाय। वहाँ पहुँचकर पितरों का पूजन करे, तब वह तीर्थ के यथार्थ फल का भागी होता है।

---

1. किन्तु वह्निपुराण (अ. 1) के अनुसार मातृपितृमान् गृहस्थ का तीर्थयात्रा में अधिकार नहीं है।

नित्यं गृहस्थाश्रमसंस्थितस्य मनीषिभिस्तीर्थगतिर्निषिद्धा।
मातुः पितुर्भक्तिमना गृहस्थः सुतो न कुर्यात् खलु तीर्थयात्राम्।। (वह्निपुराण, अध्याय 1)

कृतपारणो हृष्टो गच्छेन्नियमधृक् पुनः।
आगत्याभ्यर्च्य च पितॄन् यथोक्तफलभाग्भवेत्।। (स्कं. पु. काशीख. पू. 6/57)

तीर्थयात्रा के मुहूर्त के बारे में कहा गया है कि गुरु-शुक्र के बाल, वृद्ध अथवा अस्त होने पर, मलमास में, गुर्वादित्य के समय, सूर्य के दक्षिणायन में, गुरु के अतिचार में, लुप्त संवत्सर में तथा पत्नी के गर्भवती होने पर तीर्थयात्रा नहीं करनी चाहिये। चलने के समय विभिन्न दिशाओं के यात्रामुहूर्त का भी ध्यान रखा जा सकता है(तीर्थांक पृ. 615)। हालांकि स्कंदपुराण में यह भी कहा गया है कि अगर शुभ समय में अवकाश न हो तो जब कभी भी अपने पास धन हो, मन में यात्रा के लिये उत्साह हो एवं कोई पर्व आया हो, तभी यात्रा की जा सकती है। (स्कं. पु. प्रभा. ख. अ. 26)

तीर्थयात्रा के लिये प्रस्थान करने से पहले ग्राम की परिक्रमा करे(नारदमहापु. उत्तर. अ. 62)। तत्पश्चात् मौन एवं एकाग्रचित्त हो मन एवं इन्द्रियों को वश में रखते हुए यात्रा के लिये निकले(स्कन्दपु. प्रभासखण्ड अ. 26)। तीर्थयात्रा भगवान् के नाम की रट लगाते हुए आरंभ करे। एक कोस(3 कि. मी.) जाने के बाद वहाँ तीर्थ(पवित्र नदी, तालाब या कुएँ) आदि में स्नान करके क्षौर करवा ले अर्थात् सिर का मुण्डन करवा ले। उसके बाद बिना गाँठ का दण्ड अर्थात् मोटी चिकनी बाँस की मजबूत लाठी, कमण्डलु और आसन लेकर तीर्थ के उपयोगी वेष धारण करे (पूरी सादगी स्वीकार करे) तथा(धन, मान, बड़ाई, सत्कार, पूजा आदि के) लोभ का त्याग कर दे।

क्रोशमात्रं ततो गत्वा राम रामेति च ब्रुवन।
तत्र तीर्थादिषु स्नात्वा क्षौरं कुर्याद् विधानवित्।।
ततो दण्डं तु निर्ग्रन्थिं कमण्डलुमथाजिनम्।
बिभृयाल्लोभनिर्मुक्तस्तीर्थवेषधरो नरः।। (पद्मपुरा. पातालख. 19/20, 22)

तीर्थयात्री के अगर पिता जीवित हैं तो उसे तीर्थों पर क्षौर कराते समय मूँछ नहीं मुड़ाना चाहिये(नारदपु. उत्तरभाग, अ. 62)। तीर्थ के दर्शन होते ही साष्टाङ्ग अथवा(स्त्री) पञ्चाङ्ग प्रणाम करे।

तदनन्तर 'तीर्थाय नमः' कहकर पुष्पांजलि देनी चाहिये। तीर्थ में मुसलस्नान (सिर को जल में पहले डालकर किया जानेवाला स्नान) करके पूर्व या उत्तर मुख हो बाल-दाढ़ी तथा नख का वपन करवाये (अर्थात क्षौर करवाये)। क्षौर पहले उत्तर दिशावाले बाल, नख आदि से शुरू करे(धर्मसिन्धु: पृ. 850)। तत्पश्चात् ॐकार(प्रणव) का उच्चारण करके तीर्थ का जल स्पर्श करे। तदनन्तर जल के भीतर प्रवेश करके निम्नलिखित मन्त्रों में से किसी एक का पाठ करते हुए स्नान करे।

स्नान के मन्त्र

ॐ **नमो देवदेवाय शितिकण्ठाय दण्डिने।**

रुद्राय वामहस्ताय चक्रिणे वेधसे नमः।।
सरस्वती च सावित्री देवमाता विभावरी।
सन्निधाने भवत्वत्र तीर्थे पापप्रणाशने।।

(स्कं. पु. प्रभासख. अ. 26 तथा नगण्य अन्तर के साथ धर्मसिन्धुः पृ 850)

सागरस्वननिर्घोष दण्डहस्तासुरान्तक।
जगत्स्रष्टर्जगन्मद्र्दिन् नमामि त्वां सुरेश्वर।।
तीक्ष्णदंष्ट्र महाकाय कल्पान्तदहनोपम।
भैरवाय नमस्तुभ्यमनुज्ञां दातुमर्हसि।।
(इमं मन्त्रं समुच्यार्य तीर्थस्नानं समाचरेत्।।)

(तीर्थांक पृ. 615 तथा नगण्य अन्तर के साथ निर्णयसिन्धुः, सावित्री ठाकुर प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 1021 पादटिप्पणी)

बिना मन्त्र के, बिना पर्व के और बिना क्षौरकर्म किये समुद्रजल का स्पर्श नहीं करना चाहिये। निम्नांकित मन्त्र का उच्चारण करके सागर के जल का स्पर्श करना उचित है। इस मंत्र का उच्चारण करते हुए समुद्र में स्नान करे।

ॐ नमो विष्णुगुप्ताय विष्णुरूपाय ते नमः।
सान्निध्ये भव देवेश सागरे लवणाम्भसि।। (संक्षिप्त स्कं. पु. प्रभास. अ. 27)

एक तीर्थ में स्नान करते समय दूसरे तीर्थ की प्रशंसा नहीं करनी चाहिये। पर गंगाजी का सर्वत्र कीर्तन किया जा सकता है। साधारण तीर्थों में श्रेष्ठ तीर्थों (जैसे पुष्कर, प्रभास, काशी, प्रयाग, कुरुक्षेत्र, गया आदि) का स्मरण किया जा सकता है।

दूसरे काम से तीर्थ में जाने पर भी वहाँ स्नान अवश्य करना चाहिये। यों करने पर वह तीर्थस्नान के फल को पाता है। तीर्थयात्रा के फल को नहीं।

तीर्थं प्राप्य प्रसङ्गेन स्नानं तीर्थे समाचरेत्।
स्नानजं फलमाप्नोति तीर्थयात्राश्रितं न तु।। (स्कं. पु. काशीख. पू. 6/61)

जो दूसरे किसी कार्य से तीर्थ में जाता है और वहाँ स्नान करता है, उसके लिये मुनियों ने स्नान के आधे फल की प्राप्ति बतायी है(स्कं. पु. प्रभा. ख. अ. 26)। इसी प्रकार तीर्थ में जाकर पिता, माता, भाई, सुहृद तथा गुरु- जिसके उद्देश्य से भी मनुष्य गोता लगाता है, वह उस तीर्थ-स्नान के पुण्य का द्वादशांश प्राप्त कर लेता है(स्कं. पु. प्रभा. ख. अ. 26)। जो दूसरों के लिये तीर्थ में जाता है, उसको तीर्थफल का सोलहवाँ भाग मिलता है। जो दूसरे कार्य से जाता है, उसको आधा फल मिलता है और कुश का पुतला बनाकर उसे तीर्थ में स्नान कराया जाता है तो जिसके उद्देश्य से पुतला नहलाया जाता

है, उसे तीर्थस्नान करने का आठवाँ भाग प्राप्त हो जाता है।

षोडशांशं स लभते यः परार्थं च गच्छति।
अर्धं तीर्थफलं तस्य यः प्रसङ्गेन गच्छति।।
कुशप्रतिकृतिं कृत्वा तीर्थवारिणि मज्जयेत्।
मज्जयेच्च यमुद्दिश्य सोऽष्टमांशं लभेत वै।। (स्कं. पु. काशीख. पू. 6/63-64)

दूसरों के लिये स्नान की विधि

यदि कोई उदार व्यक्ति माता, पिता, गुरु, भाई, मित्र आदि के लिये तीर्थों में स्नान करना चाहे तो शास्त्रों में इसकी भी व्यवस्था बतलायी गयी है। जिनके लिये स्नान किया जाता है, स्नान का आठवाँ भाग उसे मिलता है।

मातरं पितरं जायां भ्रातरं सुहृदं गुरुम्।
यमुद्दिश्य निमज्जेत अष्टमांशं लभेत सः।। (निर्णयसिन्धुः, वेंकटेश्वर प्रेस, पृ. 774)

जीवित एवं मृत व्यक्तियों के निमित्त स्नान की विधियाँ भिन्न-भिन्न हैं। यहाँ पर दोनों विधियाँ लिखी जा रही हैं। ये विधियाँ नित्यकर्म-पूजाप्रकाश से ली गयी हैं।

(क) जीवित व्यक्ति के लिये – जीवित व्यक्ति के नाम का इस प्रकार '**अद्य.......अमुक शर्मणः, (वर्मणः, गुप्तस्य, दासस्य) कृते.....स्नानं करिष्यामि**' संकल्प कर स्नान करे।

(ख) मृत व्यक्ति के निमित्त स्नान – मृत व्यक्ति के लिये कुश में गाँठ देकर, उस कुश में उसका ध्यान कर नीचे लिखे मन्त्र को पढ़कर कुश को नहला दे-

कुशोऽसि कुशपुत्रोऽसि ब्रह्मणा निर्मितः स्वयं।
त्वयि स्नाते स च स्नातो यस्येदं ग्रन्थिबन्धनम्।।

इसके बाद ग्रन्थि का विसर्जन कर दे।

तीर्थों में पहुँचकर मुण्डन और स्नान के पश्चात् देवताओं, मनुष्यों एवं पितरों का तिलमिश्रित जल से तर्पण करे।[1] तीर्थयात्रा के बीच में कोई नदी मिल जाय तो उसे पार करते समय पितरों का जोर-जोर से नामोच्चारण करे।

जलं प्रतरमाणश्च कीर्तयेत् प्रपितामहान्।
नदीमासाद्य कुर्वीत पितॄणां पिण्डतर्पणम्।। (तीर्थांक पृ. 616)

तीर्थों में तर्पण न करना पितरों के लिये बड़ा दुःखद होता है।

यस्तु तीर्थे नरः स्नात्वा न कुर्यात् पितृतर्पणम्।

1. तर्पण की विधि के लिये अलग से लिखा अध्याय देखें।

पिबन्ति देहनिस्रावं पितरस्तु जलार्थिनः।।

(तीर्थांक पृ. 616 में वीरमि. तीर्थप्र. पृ. 68 का वचन)

तीर्थों में किये जानेवाले तर्पण में निषिद्ध तिथि-वारों का दोष नहीं होता।

तीर्थे तिथिविशेषे च गयायां प्रेतपक्षके।

निषिद्धेऽपि दिने कुर्यात् तर्पणम् तिलमिश्रितम्।। (निर्णयसिन्धुः पृ. 986)

अर्थात् तीर्थ, तिथि विशेष(जैसे महालय, अष्टकादि), गया एवं पितृपक्ष में निषिद्ध दिनों में भी तिलमिश्रित तर्पण करना चाहिये।

स्कंदपुराण(प्रभासखण्ड, अध्याय 26) में कहा गया है कि जो मानव तीर्थ में पितरों का श्राद्ध और स्नान करता है तथा सब प्राणियों के हित में संलग्न रहता है, वह तीर्थ के पूर्ण फल को प्राप्त करता है। अतः प्रत्येक तीर्थ में स्नान एवं तर्पण के बाद श्राद्ध[1] करना चाहिये। तीर्थश्राद्ध में ब्राह्मण की परीक्षा नहीं करनी चाहिये।[2] अगर वह अन्न की इच्छा रखनेवाला हो तो उसे अवश्य भोजन करा दे। तीर्थों में सत्तू, हविष्यान्न, खीर, तिल के चूर्ण और गुड़ से पिण्डदान करे। तीर्थ में अर्घ्य और आवाहन के बिना ही श्राद्ध करे। श्राद्ध के योग्य समय हो अथवा न हो, तीर्थ में पहुँचते ही तुरंत श्राद्ध-तर्पण करे। श्राद्ध में विघ्न न आने दे।

न परीक्ष्यो द्विजस्तीर्थेष्वन्नार्थी भोज्य एव च।
शक्तुभिः पिण्डदानं च चरुणा पायसेन च।।
कर्तव्यमृषिभिर्दिष्टं पिण्याकेन गुडेन च।
श्राद्धं तत्र प्रकर्तव्यमर्घ्यावाहनवर्जितम्।।
अकालेऽप्यथ वा काले तीर्थे श्राद्धं च तर्पणम्।
अविलम्बेन प्रकर्तव्यं नैव विघ्नं समाचरेत्।।

(स्कंपु. काशीखं. पू. 6/58-60)

तीर्थश्राद्ध में गीध, चाण्डाल आदि को भी देखने से न रोकना चाहिये(धर्मसिन्धुः पृ. 847)। यहाँ उनकी दृष्टि भली ही समझी जाती है। जिसका पिता जीवित हो, उसका भी तीर्थ-श्राद्ध में अधिकार है।(तीर्थांक पृ. 616)

तीर्थ में जिस दिन श्राद्ध किया जाय उस दिन वहाँ से यात्रा न करे। उसके अगले दिन ही वहाँ से चले(**श्राद्धोत्तरदिने ततो गमनं न श्राद्धदिने।** धर्मसिन्धुः पृ. 850)। परन्तु गया से उसी दिन चल

1. श्राद्ध की विधि के लिये अलग से लिखा अध्याय देखें। अगर श्राद्ध में अशक्त हो तो तर्पणमात्र ही कर ले। (निर्णयसिन्धुः पृ. 1331)

2. श्राद्धीय-ब्राह्मण के न मिलने पर ही अन्य ब्राह्मण की परीक्षा नहीं करनी चाहिए।

देना चाहिए।

गयायां श्राद्धदिने एव प्रस्थानम्।
तीर्थान्तरे तु श्राद्धोत्तरदिने इत्याहुः।। (निर्णयसिन्धुः पृ. 1019)

संकल्प की हुई यात्रा के बीच में दूसरे तीर्थ की प्राप्ति होने पर वहाँ भी श्राद्ध - तर्पण आदि करना चाहिये। (**संकल्पितयात्रामध्ये तीर्थान्तरप्राप्तौ श्राद्धादिकं कार्यमेव।** धर्मसिन्धुः पृ. 849)

तीर्थ में पहुँचने पर बिना बिलम्ब किये स्नान, तर्पण तथा श्राद्ध आदि करे। पर्व आदि के काल का विचार नहीं करना चाहिये। अकस्मात् महातीर्थ में पहुँचने पर दो - तीन दिन का निवास न हो सके तो भोजन किया हुआ भी, रात में भी, सूतकी को भी ग्रहण पर्व के समान स्नान और सुवर्ण आदि से तीर्थश्राद्ध करना चाहिये। मलमास में भी इसी प्रकार की व्यवस्था समझनी चाहिये।

तीर्थप्राप्तावविलम्बेन स्नानपितृतर्पणश्राद्धादि कुर्यात्। न पर्वादिकालं विचारयेत्। आकस्मिकमहातीर्थप्राप्तौ द्वित्रिदिनादिवासासंभवे भुक्तेनापि रात्रावपि सूतकिनापि ग्रहणपर्व - णीवस्नानं हिरण्यादिना तीर्थश्राद्धं च कार्यम्। एवं मलमासेऽपि योज्यम्। (धर्मसिन्धुः पृ. 851)

सूतकी या रजस्वला को ग्रहण पर्व के अवसर पर पात्र से तीर्थ में से जल निकालकर स्नान करना चाहिये। ग्रहण या तीर्थ नैमित्तिक रूप से प्राप्त होने के कारण सूतकादि दोषों से प्रभावित नहीं होता।

न सूतकादिदोषोऽस्ति ग्रहे होम जपादिषु।
ग्रस्ते स्नायादुदक्याऽपि तीर्थादुद्धृत्य - वारिणा।। (निर्णयसिन्धुः पृ. 112)

पक्वान्न से तीर्थ में श्राद्ध करे तो पक्वान्न से ही पिण्ड दे। सुवर्ण आदि से श्राद्ध करे तो पिण्ड द्रव्य ये हैं - सत्तू, हलवा, खीर, पिण्याक और गुड़, इनमें से कोई एक द्रव्य। तीर्थ में पिण्डों को विसर्जन कर देना चाहिये। (धर्मसिन्धुः पृ. 852)

बिना पुत्रवाली विधवा पति का श्राद्ध करे, न कि पुत्रवती। अनुपनीत (जिसका यज्ञोपवीत संस्कार न हुआ हो) पुत्र भी पितृश्राद्ध करे। यति पिण्डदान न करके मात्र दण्डप्रदर्शन करे। (धर्मसिन्धुः पृ. 852)

संन्यासियों को तीर्थ में तर्पण एवं श्राद्ध नहीं करना चाहिए। (निर्णयसिन्धुः पृ. 1331)

तीर्थ में वास करनेवाले को मृदुभाषी तथा परोपकार में लगा होना चाहिये। परस्त्री, परद्रव्य, निन्दा, ईर्ष्या, झूठ, इन्द्रियासक्ति आदि से दूर रहना चाहिये। व्रत, स्नान, भगवद्भजन, उपवास आदि शुभकर्म तीर्थवासी को करना चाहिये। तीर्थ में रहते हुए भूलकर भी पाप नहीं करना चाहिये; क्योंकि अन्यत्र किया हुआ पाप तीर्थ में स्नान से कट जाता है, किन्तु तीर्थ - स्थल में किया हुआ पाप वज्रलेप हो जाता है। वह फिर किसी प्रकार नहीं नष्ट होता।

अन्यक्षेत्रे कृतं पापं पुण्यक्षेत्रे विनश्यति।
पुण्यक्षेत्रे कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति।। (स्कंदपुराण, प्रभासखण्ड अ. 26)

काशी आदि मुक्ति प्रदान करनेवाली पुरियों में पापाचरण करना तो और भी बुरा है। वहाँ का पापाचारी वहीं मर भी जाय तो भी मोक्ष के पहले दीर्घकालतक उसे भैरवपिशाच बनकर भैरवी यातना सहनी पड़ती है। यह भैरवी यातना करोड़ों नरकों से भी अधिक दुःखद है। लिंगपुराण में कहा गया है कि अन्यत्र किया हुआ पाप वाराणसी में समाप्त हो जाता है परन्तु यहाँ पर किया गया पाप पापी को पिशाच बनाकर नरक ले जाता है।

अन्यत्र तु कृतं पापं वाराणस्यां व्यपोहति।।
वाराणस्यां कृतं पापं पैशाच्यनरकावहम्। (लिंगपु. 1/103/75-76)

तीर्थयात्री को परान्न तथा पर-भोजन त्याग देना चाहिये। प्रतिग्रह न करनेवाले मनुष्य को तीर्थयात्रा दस गुना पुण्य देनेवाली होती है। जो ब्राह्मण लोभवश तीर्थ-क्षेत्र में दान की रुचि रखता है, उस दूषित हृदयवाले के लिये न तो यह लोक सुखद होता है न परलोक ही। अतः तीर्थ में ब्राह्मणों को भी थोड़ा भी प्रतिग्रह नहीं स्वीकार करना चाहिये। असमर्थ, अन्ध, पंगु तथा यायावर(साधु अथवा मुनि), जो दूसरों से अन्न लेने के लिये विवश हैं, उनका प्रतिग्रह दोषरहित माना गया है।(स्कंदपु. प्रभासख. अ. 26)।

तीर्थयात्री को जितेन्द्रिय रहना चाहिये, परान्न तथा क्रोध का सर्वथा परित्याग कर देना चाहिये। उसे सदा पवित्र तथा ब्रह्मचर्य का पालन करते रहना चाहिये।

तीर्थं गच्छंस्त्यजेत् प्राज्ञः परान्नं परभोजनम्।
जितेन्द्रियो जितक्रोधो ब्रह्मचारी भवेच्छुचिः।। (तीर्थांक पृ. 617)

मनुष्य को तीर्थयात्रा में प्रातःकाल स्नान करके एक ही समय तीनों काल की संध्याओं का अनुष्ठान कर लेना चाहिये। अपवित्र अवस्था में अथवा बिना स्नान किये नहीं चलते जाना चाहिये। भोजन करके भी यात्रा नहीं करनी चाहिये।

तीर्थे गच्छंश्चरेत् संध्यास्तिस्र एकत्र मानवः।
नास्नातो नाशुचिर्गच्छेन्न भुक्त्वा न च सूतकी।।(वीरमित्रो. तीर्थप्रकाश पृ. 41)

तीर्थयात्रा में, विवाह के अवसर पर, युद्ध के समय, राष्ट्रविप्लव के समय तथा शहर या गाँव में आग लग जाने पर स्पर्शास्पर्श का दोष नहीं लगता।

तीर्थे विवाहे यात्रायां संग्रामे देशविप्लवे।
नगरग्रामदाहे च स्पृष्टास्पृष्टिर्न दुष्यति।।

(निर्णयसिन्धुः, सावित्री ठाकुर प्रकाशन, वाराणसी, 1994 पृ. 636)

सभी तीर्थों में जाकर मुण्डन तथा उपवास अवश्य करना चाहिये।[1] मुण्डन कराने से सिर पर चढ़े पाप दूर हो जाते हैं। जिस दिन तीर्थ में पहुँचना हो, उसके पहले दिन भी उपवास करे और तीर्थ में पहुँचने के दिन श्राद्ध करे।

तीर्थोपवासः कर्तव्यः शिरसो मुण्डनं तथा।
शिरोगतानि पापानि यान्ति मुण्डनतो यतः।।
यदह्नि तीर्थप्राप्तिः स्यात् ततोऽह्नः पूर्ववासरे।
उपवासस्तु कर्तव्यः प्राप्तेऽह्नि श्राद्धदो भवेत्।।

(स्कंपु. काशीखं. पू. 6/65-66)

किन्तु कुरुक्षेत्र, बदरीनाथ, जगन्नाथपुरी तथा गया में मुण्डनादि का नियम नहीं है। सौभाग्यवती स्त्रियों को चाहिये कि वे सब केशों को हाथ से पकड़कर अग्रभाग की ओर से दो अंगुल कटवा दें(उनके लिये मुण्डन की विधि नहीं है)।

मुण्डनं चोपवासश्च सर्वतीर्थेष्वयं विधिः।
वर्जयित्वा कुरुक्षेत्रं विशालं विरजं गयाम्।।

(धर्मसिन्धुः पृ. 850 तथा स्कं. पु. प्रभासखण्ड अ. 27)

स्कंदपुराण(प्रभासखण्ड अ. 26) में कहा गया है कि तीर्थों में उपवास से बढ़कर और कोई उपाय नहीं है, जो पापियों के सब पापों को शान्त करनेवाला तथा सत्पुरुषों को उनके अभीष्ट मनोरथों को देनेवाला हो।

ब्रह्मपुराण(अध्याय 25) में कहा गया है कि "जो मनुष्य(सभी) तीर्थों में उत्तम श्रद्धा से सम्पन्न हो उपवास एवं इन्द्रियसंयमपूर्वक विधिवत् स्नान; देवता, ऋषि, मनुष्य तथा पितरों का तर्पण; देवताओं का पूजन एवं तीन रात्रितक निवास करता है, वह प्रत्येक तीर्थ के पृथक्-पृथक् फलरूप से अश्वमेध-यज्ञ का पुण्य प्राप्त करता है-इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।" अतः प्रत्येक तीर्थ में कम से कम तीन राततक निवास करना चाहिये। निवास के दौरान उपवास भी रखना चाहिये।

1. यहाँ सभी तीर्थों से अभिप्राय प्रमुख तीर्थों से है। तीर्थ में निषिद्ध दिनों में भी क्षौर(मुण्डन) करवाना चाहिये। (निर्णयसिन्धुः, वेंकटेश्वर प्रेस, पृ. 773)

दस मास बाद अगर पुनः तीर्थ की प्राप्ति हो तो फिर से मुण्डन, उपवास, तीर्थश्राद्ध आदि करे। प्रयाग में तो दस मास से पहले जाने पर भी मुण्डन आदि का विधान है, बशर्ते वहाँ पर 24 मील दूर से आगमन हुआ हो।

ऊर्ध्वमब्दाद् द्विमासोनात् पुनस्तीर्थं व्रजेद्यदि।
मुण्डनं चोपवासं च ततो यत्नेन कारयेत्।।

(धर्मसिन्धुः पृ. 850 तथा निर्णयसिन्धुः पृ. 773)

प्रयागे प्रतियात्रं तु योजनत्रय इष्यते।
क्षौरं कृत्वा तु विधिवत्ततः स्नायात्सितासिते।। (निर्णयसिन्धुः पृ. 773)

तीर्थयात्रा, विवाह, यज्ञ तथा तीर्थाङ्ग क्रियाओं में सूतक का स्पर्श नहीं होता। अतएव इसके कारण आगे के कर्मों को रोकना नहीं चाहिये। अर्थात् इनके प्रारंभ हो जाने पर सूतक नहीं लगता।

विवाहदुर्गयज्ञेषु यात्रायां तीर्थकर्मणि
न तत्र सूतकं तद्वत्कर्मयज्ञादि कारयेत्।

(निर्णयसिन्धुः पृ. 775 पर पैठीनसि स्मृति का वचन)

परन्तु बुद्धिपूर्वक आशौच में तीर्थयात्रा आरंभ न करे। यात्रा के दौरान सूतक हो जाने पर उसका कोई प्रभाव नहीं होता। (निर्णयसिन्धुः, सावित्री प्रकाशन, पृ. 1331)

यद्यपि अङ्ग (भागलपुर, जो बिहारप्रान्त का एक जिला है), बङ्ग (बंगाल), कलिङ्ग (उड़ीसा), सौराष्ट्र (गुजरात) तथा मगध (बिहार का एक भूभाग) स्थित देशों में जाने पर पुनः संस्कार तथा पुनः स्तोम-याजन का विधान है; तथापि तीर्थयात्रा के प्रसंग में इन स्थानों की यात्रा भी निर्दोष है।

अङ्गबङ्गकलिङ्गेषु सौराष्ट्रमगधेषु च।
तीर्थयात्रां बिना गच्छन् पुनः संस्कारमर्हति।।

(तीर्थांक पृ. 617 पर वीरमि. तीर्थप्रकाश का वचन)

वाराणसी (काशी) से लगभग 30 कि. मी. दूर स्थित कर्मनाशा नदी जो उत्तरप्रदेश एवं बिहार को विभाजित करती है, उसके स्पर्शमात्र से, करतोया नदी (जो बंगाल के बागोड़ा जिले में है) का उल्लंघन करने से तथा गण्डकी नदी पर तैरने से मनुष्य के सारे पुण्य नष्ट हो जाते हैं। अतः तीर्थयात्रा के दौरान इनका ध्यान रखना चाहिये।

कर्मनाशानदीस्पर्शात् करतोयाविलङ्घनात्।
गण्डकीबाहुतरणाद् धर्मः स्खलति कीर्तनात्।

(तीर्थांक पृ. 617 पर आनंदरामायण, यात्राकाण्ड 9/3; यागकाण्ड 3/36 का वचन)

तपस्या का फल सर्वाधिक रेवा (नर्मदा) के तट पर होता है, अतः नर्मदा-तीर पर तप, गया में पिण्डदान, कुरुक्षेत्र में दान तथा काशी में प्राणत्याग करना चाहिये। तीर्थसेवी को इन सब बातों का ध्यान रखना चाहिये।

रेवातीरे तपस्तप्येत् पिण्डं दद्याद् गयाशिरे।
दानं दद्यात् कुरुक्षेत्रे मरणं जाह्नवीतटे।। (तीर्थांक पृ. 617)

तीर्थयात्री को युगन्धर में दधिभक्षण, अच्युतस्थल में रात्रिवास तथा भूतालय में स्नान नहीं करना चाहिये। इनका पाप सूर्यग्रहण में सरस्वती-स्नान से दूर होता है।

युगन्धरे दधि प्राश्य उषित्वा चाच्युतस्थले।
तद्वद्भूतिलये स्नात्वा सपुत्रा वस्तुमर्हसि।। (तीर्थांक पृ. 618)

तीर्थयात्री जिह्वा से भगवान् का नाम तथा मन से भगवान् का स्मरण करते हुए पैदल ही तीर्थ की यात्रा करे; तभी वह महान् अभ्युदय का साधक होता है। जो मनुष्य सवारी से यात्रा करता है उसका फल सवारी ढोनेवाले प्राणी के साथ बराबर-बराबर बँट जाता है। जूता पहनकर जानेवाले को चौथाई फल मिलता है और बैलगाड़ी पर जानेवाले पुरुष को गोहत्या आदि का पाप लगता है(पद्मपुराण, पातालखण्ड अ. 19)। मत्स्यपुराण में मार्कण्डेयजी कहते हैं कि बैल(गाड़ी) पर सवार होकर तीर्थ में जानेवाला व्यक्ति घोर नरक में वास करता है। पितृगण उसका जल ग्रहण नहीं करते। गौवों का क्रोध बड़ा भयानक होता है।

बलीवर्दसमारूढः शृणु तस्यापि यत् फलम्।
सलिलं च न गृह्णन्ति पितरस्तस्य देहिनः॥
नरके वसते घोरे गवां क्रोधो हि दारुणः॥

(तीर्थांक पृ. 618 में मत्स्यपु. ब्राह्मीसं. का वचन)

स्कंदपुराण(प्रभासखण्ड, अध्याय 26) में महादेवजी कहते हैं कि 'इस लोक में पैदल तीर्थयात्रा करने को उत्तम तप बताया गया है। किसी सवारी से यात्रा करने पर तीर्थ में स्नानमात्र का ही फल मिलता है, यात्रा का नहीं। देवि! जो मनुष्य अपने ही धन और अपने ही पैरों से तीर्थयात्रा सम्पन्न करते हैं, उन्हें चौगुने पुण्य की प्राप्ति होती है।

तीर्थानुगमनं पद्भ्यां तपः परमिहोच्यते।
तदेव कृत्वा यानेन स्नानमात्रं फलं लभेत्॥
ये चान्ये कुर्वते शक्त्या तीर्थयात्रां तथेश्वरि।
स्वकीयद्रव्यपादाभ्यां तेषां पुण्यं चतुर्गुणम्॥

(स्कंदपुराण, प्रभासखण्ड 26/24-25)

अत: तीर्थयात्रा में यान वर्जित है। ऐश्वर्य के गर्व से, मोह से या लोभ से जो यानारूढ़ होकर तीर्थयात्रा करता है, उसकी तीर्थयात्रा निष्फल हो जाती है।

ऐश्वर्यलोभान्मोहाद् वा गच्छेद् यानेन यो नरः।
निष्फलं तस्य तत्तीर्थं तस्माद्यानं विवर्जयेत्॥ (नारदमहापु. उत्तरभाग अ. 62)

इसलिये सवारी[1] का त्याग करे। गोयान(बैलगाड़ी आदि) पर तीर्थ में जाने से गोवध का पाप कहा जाता है। अश्वयान(घोड़ा या ताँगा आदि) पर जाने से यह यात्रा निष्फल होती है। तथा नरयान

1. मूलपाठ में 'यान' शब्द आया है, अपने यहाँ यान उस सवारी के लिये प्रयुक्त हुआ करता है जो किसी न किसी जीव द्वारा खींची या ढोयी जाती है। जैसे नरयान, अश्वयान, वृषभ-यान आदि। मूल में आगे इन्हीं का नाम लेकर दोष बताया गया है। अत: वर्तमान रेल या मोटरगाड़ी या वायुयान के लिये निषेध नहीं मानना चाहिये। फिर भी जो सर्वथा पैदल यात्रा कर सकें उन्हीं की यात्रा सर्वोत्तम कही जायेगी।

(पालकी या रिक्शा आदि) पर जाने से तीर्थ का आधा फल मिलता है; किन्तु पैदल चलने से चौगुने फल की प्राप्ति होती है। (नारदमहापुराण, उत्तरभाग, अध्याय 62)

शास्त्रों के अनुसार नौका में यान का दोष नहीं लगता है (**'नौकायानमयानं स्यात्'**, वीरमि. तीर्थप्रकाश का तीर्थांक पृ. 618 पर वचन)। साथ ही चक्रवर्ती सम्राट्* तथा मठपति को भी यानादि से तीर्थयात्रा करने में दोष नहीं माना जाता। पर माण्डलिक आदि दूसरे राजाओं* को तो पैदल ही यात्रा करनी चाहिये।

पदा यात्रा न कर्तव्या छत्रचामरधारिणा।
राज्ञा द्वीपाधिपतिना कार्या माण्डलिकेन तु।।
पृथिवीशस्य देवस्य लग्नोद्युक्तवरस्य च।
तथा मठाधिपस्यापि गमनं न पदा स्मृतम्।।

(तीर्थांक पृ. 618 पर आनंदरामायण, यात्राकाण्ड 8/4-5 का वचन)

नारदमहापुराण (उत्तरभाग अ. 62) में कहा गया है कि यात्रा में वर्षा और धूप आदि में छाता लगाकर हाथ में डंडा लेकर चले और कंकड़ तथा काँटों से शरीर को बचाने की इच्छा से मनुष्य सदा जूता (पादुका) पहनकर चले। स्कंदपुराण (प्रभासखंड अ. 26) में छाता और जूते को न धारण करनेवाले को अधिक फल बताया गया है। पद्मपुराण (पातालखण्ड अ. 19) में बताया गया है कि जूता पहनकर यात्रा करनेवाले को चौथाई फल मिलता है।

कहा गया है कि सवारी तीर्थयात्रा का आधा फल अपहरण कर लेती है। उसका आधा छत्र तथा पादुका अपहरण कर लेते हैं। यात्रा के दौरान व्यापार पुण्य का तीन चौथाई (3/4) भाग अपहरण कर लेता है तथा प्रतिग्रह (दूसरों से दान, भोजन आदि लेना) तीर्थ के सारे पुण्य को नष्ट कर देता है।

यानमर्धफलं हन्ति तदर्द्धं छत्रपादुके।
वाणिज्यं त्रींस्तथा भागान् सर्वं हन्ति प्रतिग्रहः।।

(तीर्थांक पृ. 618 पर वीरमि. तीर्थप्रकाश का वचन)

गंगा (आदि पवित्र तीर्थों) को प्राप्त कर निम्नलिखित चौदह कार्य नहीं करने चाहिये-समीप में शौच, गंगाजी में आचमन (कुल्ला), बालझाड़ना (काढ़ना अथवा केशशृंगार करना), निर्माल्य (जूठन) डालना, मैल छुड़ाना, शरीर मलना, हँसी-मजाक करना (क्रीड़ा), दान लेना, रतिक्रिया (अथवा मैथुन), दूसरे तीर्थ के प्रति अनुराग, दूसरे तीर्थ की महिमा गाना, कपड़ा धोना या छोड़ना, जल पीटना तथा तैरना।

---

* आज के प्रजातान्त्रिक समाज में न तो कोई चक्रवर्ती सम्राट है और न ही कोई राजा है। अतः इसका अर्थ राष्ट्र का सर्वोच्च शासक लगाना चाहिये।

गङ्गां पुण्यजलां प्राप्य चतुर्दश विवर्जयेत्।
शौचमाचमनं केशं निर्माल्यमघमर्षणम्।।
गात्रसंवाहनं क्रीडां प्रतिग्रहमथो रतिम्।
अन्यतीर्थरतिं चैव अन्यतीर्थप्रशंसनम्।।
वस्त्रत्यागमथाघातं संतारं च विशेषतः।

(रघुनन्दन का प्रायश्चित्त-तत्त्व 1/535 का तीर्थांक, पृ. 618 पर वचन)

तीर्थ अनगिनत हैं, जिनमें से कुछ सुगम तो कुछ दुर्गम तो कुछ केवल देवगम्य ही हैं। स्कंदपुराण में कहा गया है कि स्वधर्म की वृद्धि के लिये सभी तीर्थो की यात्रा करनी चाहिये। जहाँ शरीर से जाना संभव न हो वहाँ मन से जाना चाहिये(संक्षिप्त स्कंदपुराणांक, प्रभासख. पृ. 950)। महाभारत में कहा गया है कि 'जो समस्त तीर्थो के दर्शन की इच्छा रखता हो, वह दुर्गम और विषम होने के कारण जिन तीर्थो में शरीर से न जा सके, वहाँ मन से यात्रा करे।' महाभारत में ही अन्यत्र पुलस्त्यजी भीष्म से कहते है कि-'भीष्म! मैंने यहाँ गम्य और अगम्य सभी प्रकार के तीर्थो का वर्णन किया है। सम्पूर्ण तीर्थो के दर्शन की इच्छा पूर्ण करने के लिये मनुष्य जहाँ जाना सम्भव न हो, उन अगम्य तीर्थो में मन से यात्रा करे अर्थात् मन से उन तीर्थो का चिन्तन करे।'

यान्यगम्यानि तीर्थाणि दुर्गाणि विषमाणि च।
मनसा तानि गम्यानि सर्वतीर्थसमीक्षया।। (महाभा. अनुशासनपर्व 25/66)
गम्यान्यपि च तीर्थानि कीर्तितान्यगमानि च।।
मनसा तानि गच्छेत सर्वतीर्थ समीक्षया। (महाभा. वनपर्व 85/104-105)

अतएव सर्वथा असमर्थ तथा अशक्त व्यक्ति जो पार्थिव-तीर्थयात्रा नहीं कर सकते, उन्हें भी निराश होने की आवश्यकता नहीं है। उन्हें भगवत्स्मरण के साथ श्रद्धाभक्तिपूर्वक तीर्थो के विवरण का पठन, मनन, स्मरण करते रहने तथा मन से(अर्थात् कल्पना से) उनकी यात्रा करने से भी उन्हें तीर्थ का फल प्राप्त हो सकता है। उदाहरण के लिये स्कंदपुराण में कहा गया है कि 'काशी' यह दो अक्षरों का नाम जिसकी जिह्वा के अग्रभाग पर स्थित है, उस उत्तम बुद्धिवाले पुरुष को कभी गर्भ में नहीं आना पड़ता। इन दो अक्षरों का नाम प्रतिदिन प्रातःकाल जपनेवाले को इहलोक एवं परलोक दोनों में विजय प्राप्त हो लोकातीत पद की प्राप्ति होती है।(स्क. पु. काशी. उ. 85/61-62)। इसी प्रकार महाभारत में कहा गया है कि जो मन से भी कुरुक्षेत्र जाने की इच्छा करता है, उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं और वह ब्रह्मलोक को जाता है।

मनसाप्यभिकामस्य कुरुक्षेत्रं युधिष्ठिर।
पापानि विप्रणश्यन्ति ब्रह्मलोकं च गच्छति।। (वनपर्वणि 83/7)

अगर व्यक्ति स्वयं तीर्थयात्रा करने में असमर्थ है तो वह अपने प्रतिनिधि द्वारा भी तीर्थयात्रा

करवा सकता है। ऐसी स्थिति में प्रतिनिधि को तीर्थफल का 16वाँ हिस्सा प्राप्त हो जाता है। (स्कं. पु. काशीख. अ. 6)। जो दूसरे के धन से तीर्थयात्रा करता है, उसे तीर्थ के पुण्य का सोलहवाँ अंश प्राप्त होता है। (नारदपु. उत्तर. अ. 62)। इसी प्रकार जो मनुष्य दूसरे के अन्न से जीविका चलाते हुए यात्रा करता है, वह उस तीर्थ-यात्रा के सम्पूर्ण फल का सोहलवाँ भाग पाता है (स्कं. पु. प्रभासखण्ड, अ. 26)।

जो शक्ति के अनुसार दूसरे को अपने धन एवं सवारी से तीर्थयात्रा करवाता है उसको चौगुना पुण्य होता है।

यश्चान्यं कारयेच्छक्त्या तीर्थयात्रां नरेश्वरः।।
स्वकीयद्रव्ययानाभ्यां तस्य पुण्यं चतुर्गुणम्।* (धर्मसिन्धुः पृ. 849)

अगर यात्रा के बीच में आशौच या रजोदोष हो जाय तो उसकी शुद्धितक ठहर कर उसके बाद यात्रा करे। उदाहरण के लिये रजोनिवृत्ति के अनन्तर अर्थात् पांचवें दिन यात्रा करे। परन्तु कठिन मार्ग में यह दोष नहीं होता।

यात्रा मध्ये आशौचे रजोदोषे वा शुद्धिपर्यन्तं स्थित्वा तदन्ते गच्छेत्।
विषममार्गे तु न दोषः।* (धर्मसिन्धुः पृ. 849)

संकल्पित तीर्थ के मध्य में नदी पड़ने पर स्नान श्राद्ध-तर्पण आदि नदी के उस पार करना चाहिये परन्तु सरस्वती नदी पड़े तो इसी पार करना चाहिये।

मार्गेऽन्तरा नदीप्राप्तौ स्नानादि परपारतः।
अर्वागेव सरस्वत्या एष मार्गगतो विधिः।।

(धर्मसिन्धुः पृ. 849 तथा निर्णयसिन्धुः पृ. 772)

तीर्थ में निषिद्ध दिनों में भी क्षौर करवा लेना चाहिये। (निर्णयसिन्धुः पृ. 773, खेमराज, श्रीकृष्णदास प्रकाशन बम्बई, 1995)

क्षौरं नैमित्तिकं कार्यं निषेधे सत्यपि ध्रुवम्।
पित्रादिमृतिदीक्षासु प्रायश्चित्तेथ तीर्थके।। (निर्णयसिन्धुः पृ. 773)

अर्थात्- (दिन आदि का) निषेध होने पर भी क्षौर और नैमित्तिक कर्म करना, पित्रादि की मृत्युदीक्षा और प्रायश्चित्त तीर्थ में करना उचित माना गया है।

तीर्थश्राद्ध के समय, मन्त्रों के जप-पुरश्चरण के समय अथवा अन्य किसी अवसर पर व्यक्ति को संकल्प करना पड़ता है। संकल्पवाक्य में गोत्र का उल्लेख करना पड़ता है। अगर किसी व्यक्ति को किसी कारणवश गोत्र का ज्ञान नहीं हो तो वहाँ 'काश्यप' गोत्र का उच्चारण करना चाहिये।

गोत्रस्य त्वपरिज्ञाने काश्यपं गोत्रमुच्यते।
तस्मादाह श्रुतिः सर्वाः प्रजाः काश्यपसंभवाः।। (निर्णयसिन्धुः पृ. 842)

तीर्थ, श्राद्ध अथवा किसी अन्य अवसर पर अनुपनीत(जिसका जनेऊ संस्कार न हुआ हो),

* निर्णयसिन्धुः वेंकटेश्वर प्रेस, के पृ. 771 पर भी इसी प्रकार के श्लोक हैं।

स्त्री तथा शूद्रादि का उत्तरीय(अंगोछा या दुपट्टा) से ही सव्य और अपसव्य जानना चाहिये।

अनुपनीतस्त्रीशूद्रादेस्तूत्तरीयेणैव सव्यापसव्ये ज्ञेये। (निर्णयसिन्धुः पृ. 844)

पिण्डदान करते समय पिण्डों के आकार का ध्यान रखना चाहिये। इस विषय पर निर्णयसिन्धुः में कहा गया है कि-एकोद्दिष्ट और सपिण्डश्राद्ध में कैथ के बराबर का पिण्ड दे। वार्षिक तथा मासिक में नारियल के प्रमाण का पिण्ड दे। तीर्थ में और अमावस्या के प्राप्त होने पर कुक्कुटाण्ड के प्रमाण का पिण्ड दे। महालय और गयाश्राद्ध में आंवले के बराबर का पिण्ड दे।(परन्तु अगर पिण्ड आंवले से बड़ा हो जाय तो कोई दोष नहीं है।) (निर्णयसिन्धुः पृ. 904)

किसी कारणवश पिता एवं पितामह आदि के नाम का ज्ञान न हो तो आपस्तम्ब ने कहा है-**'स्वधा पितृभ्यः पृथिवीषद्भ्यः'** इससे पहला पिण्ड, **'स्वधापितृभ्योऽन्तरिक्षसद्भ्यः'** इससे दूसरा पिण्ड और **'स्वधा पितृभ्यो दिविषदभ्यः'** इससे तीसरा पिण्ड दे। इसी प्रकार मातामहों और माताओं में दे।[1] (निर्णयसिन्धुः पृ. 905)

तीर्थश्राद्ध में सदा पिण्डों को एकाग्रमन से तीर्थ में प्रक्षेप करे।(**तीर्थे श्राद्धे सदा पिण्डान् क्षिपेत्तीर्थे समाहितः।**(निर्णयसिन्धुः पृ. 914)

सभी महानदियों में, तीर्थों में और गया में मरने पर जिसका पिता जीवित हो वह भी पार्वणविधान से श्राद्ध करे।

महानदीषु सर्वासु तीर्थेषु च गयामृते।
जीवत्पितापि कुर्वीत श्राद्धं पार्वणधर्मवत्।। (निर्णयसिन्धुः पृ. 1009)

अर्थात् तीर्थों में जिसका पिता जीवित हो उसे भी श्राद्ध करना चाहिये।

स्थलतीर्थों संबंधी कुछ कठिनाईयाँ

रामायण, महाभारत तथा पुराणों आदि ग्रन्थों में वर्णित सभी तीर्थों को चार प्रकार का माना जा सकता है-(1) ज्ञात तीर्थ, (2) विकल्पसंयुत तीर्थ, (3) अर्धलुप्त तीर्थ तथा (4) लुप्त तीर्थ।

ज्ञात तीर्थ - काशी, पुरी, रामेश्वर आदि नगर; गंगा, यमुना, नर्मदा, कावेरी आदि नदियाँ; कैलास, विन्ध्य, अरुणाचल, गोवर्धन आदि पर्वत ऐसे तीर्थ हैं जो आज हमें ज्ञात हैं।

विकल्पसंयुत तीर्थ-बहुत से तीर्थ कई स्थानों में हैं। उदाहरणस्वरूप वैद्यनाथ तथा भीमशंकर ज्योतिर्लिंग जिसकी चर्चा ज्योतिर्लिंगवाले अध्याय में की जायेगी। ऐसे तीर्थों के बारे में यह निश्चय करना कठिन है कि उनमें से ठीक तीर्थ कौन सा है। बाल्मीकि-आश्रम, शोणितपुर आदि अनेक तीर्थ दो या अधिक स्थानों में हैं। इनके कुछ कारण निम्नलिखित हो सकते हैं।

1. तीर्थश्राद्धवाले अध्याय के प्रसंग में यह कथन उपयोगी है। अतः इस कथन के तीर्थश्राद्धवाले अध्याय को पढ़ते समय याद रखना चाहिये।

(क) मनुष्य में अपने को श्रेष्ठ सिद्ध करने की एक सहज प्रवृत्ति है। इस प्रवृत्ति के वशीभूत होकर वह अपने वंश, अपने वर्ग और अपने स्थान आदि को श्रेष्ठ सिद्ध करने का प्रयत्न करता रहता है। इस प्रवृत्ति के कारण वर्तमान नाम से मिलते-जुलते पौराणिक नाम लेकर यह कहा जाने लगा कि यह अमुक प्राचीन तीर्थ है, वर्तमान नाम उसी प्राचीन नाम का अपभ्रंश है। यह प्रवृत्ति दीर्घकाल से चली आ रही है। फलस्वरूप इसके वशीभूत होकर प्राचीन स्मारक बनाये और कल्पित किये गये।

(ख) श्रद्धापूर्वक बिना किसी दूषित उद्देश्य के मनुष्य कई बार ऐसे कार्य करता है जो होते तो निर्दोष हैं, किन्तु उनसे आगे जाकर भ्रम होने लगता है। जैसे दक्षिण के एक नरेश की भगवान् विश्वनाथ में श्रद्धा थी। वे काशी आये और यहाँ से एक शिवलिंग ले जाकर उन्होंने अपने यहाँ स्थापित किया। उस नगर का नाम उन्होंने तेन्काशी(दक्षिणकाशी) रख दिया। आज दक्षिण में अनेक नगरों को दक्षिणकाशी कहा जाता है। गुजरात के अनेक नगरों में हाटकेश्वर और आशापूरी देवी के मंदिर हैं। आगे सैकड़ों वर्ष पश्चात् मूल हाटकेश्वर या आशापूरी-धाम कौन सा है, यह संदिग्ध हो उठे तो क्या आश्चर्य। इस प्रकार भी कुछ तीर्थ एकाधिक हो गये हैं और उनमें मुख्य तीर्थ का निर्णय करना कठिन हो गया है।

(ग) पण्डे-पुजारियों तथा अन्य तीर्थजीवी लोगों के द्वारा भी कुछ भ्रम फैला दिये जाते हैं। कोई एक मूर्ति रखकर उसे अमुक देवता और ऋषि की मूर्ति बता देना और उस स्थान के संबंध में एक प्राचीन कथा उद्धृत करने लगना अस्वाभाविक बात नहीं रही है। ऐसी कथा जब दीर्घकालतक प्रचारित होती रहती है तब वह स्थान कल्पित होकर भी प्राचीन माना जाने लगता है। उसकी वास्तविक स्थिति जानने का साधन नहीं रह जाता।

अर्धलुप्त तीर्थ – बहुत से तीर्थ ऐसे हैं, जिनके स्थान हैं, चिन्ह हैं, किन्तु वे या तो अप्रख्यात हो गये हैं या उनके नाम बदल गये हैं। उदाहरण के लिये कालहस्ती तीर्थ में एक पर्वत पर दुर्गाजी का मंदिर है। यह स्थान 51 शक्तिपीठों में से एक है किंतु उपेक्षित हो गया है। उसे बहुत कम यात्री जानते हैं। इसी प्रकार कलकत्ते(कोलकाता) का शक्तिपीठ काली-मंदिर नहीं है, आदिकाली-मन्दिर है, जो टालीगंज से एक मील दूर है; किन्तु काली-मन्दिर की ख्याति के कारण यात्री उसे प्रायः भूलते जा रहे हैं।

पुरी से मद्रास(चेन्नई) जाते समय मंडासा-रोड स्टेशन मिलता है। उससे 12 मील की दूरी पर मंडासा पर्वत है। यह प्राचीन महेन्द्र-पर्वत है जो परशुरामजी का स्थान है। उसपर परशुरामजी का मंदिर है। उस पर्वत से निकलनेवाली नदी का नाम महेन्द्रतनया है; किन्तु पर्वत का नाम बदल कर मंडासा हो जाने से अब महेन्द्राद्रि का पता लगना ही कठिन हो गया। ऐसे अर्धलुप्त तीर्थों का सरलता से पता लगना संभव नहीं है।

लुप्त तीर्थ – बहुत अधिक तीर्थ ऐसे हैं, जो कहाँ थे, अब यह भी बताने का कोई साधन नहीं

है। दीर्घकाल में पृथ्वी पर जो भौगोलिक और ऐतिहासिक परिवर्तन हुए, उनसे न केवल मन्दिर अपितु बड़े-बड़े नगर और नदियाँतक लुप्त हो गयीं। सरोवरों का पता न लगना तो सामान्य बात है। ऐसे तीर्थों की स्थिति कहाँ थी, इसका अनुमान करने का भी कोई उपाय न होने से उनके संबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता है।

इन चारों प्रकार के तीर्थ में जो उपलब्ध हैं उनकी यात्रा श्रद्धापूर्वक करनी चाहिये। जहाँ पर एक ही तीर्थ अलग-अलग स्थानों पर माने जाते हैं ऐसी स्थिति में विवाद में न पड़कर सभी वैकल्पिक तीर्थों पर समानरूप से श्रद्धा अर्पित करें। सभी तीर्थ श्रद्धा के अनुसार ही फल देते हैं। अत: असली एवं नकली तीर्थ अथवा पुराने या नये तीर्थ के चक्कर में न पड़कर पूर्ण विश्वास एवं श्रद्धा के साथ सभी प्रकार के तीर्थों का सेवन करना चाहिये। ज्ञान की दृष्टि से सम्पूर्ण जगत् में भगवान् समानरूप से व्याप्त हैं तथा वे सभी जगहों पर श्रद्धा, प्रेम एवं भक्ति से पुकारे जाने पर दर्शन दे सकते हैं।[1] अत: जहाँ कहीं भी मंदिर, नदी, पर्वत, सरोवर आदि स्थित हों, वे सभी तीर्थ कहलाते हैं। उनका श्रद्धा एवं भावपूर्वक सेवन करने से उन्हीं फलों की प्राप्ति हो सकती है जो अन्य महान् कहे जानेवाले तीर्थों के सेवन से होती है। अत: लौकिक दृष्टि, व्यावहारिक दृष्टि अथवा सामाजिक दृष्टि से हम भले ही किसी तीर्थ को बड़ा और किसी को छोटा कह दें परन्तु आध्यात्मिक, तात्त्विक एवं ज्ञान की दृष्टि से सभी तीर्थ समान फल देनेवाले होते हैं। शास्त्रों में किसी तीर्थ को महान् या श्रेष्ठ कहने का अभिप्राय अन्य तीर्थों को छोटा या लघु फल देनेवाला सिद्ध करना नहीं है। अपितु उनका लक्ष्य उस तीर्थ की महत्ता को गौरवान्वित कर व्यक्ति की श्रद्धा को बढ़ाने अथवा दृढ़ करने का है। अत: व्यक्ति को अपने साधन, रुचि, सामर्थ्य एवं परिस्थितियों के अनुसार सेव्य तीर्थों का चयन कर लेना चाहिये। जिन तीर्थों का सेवन संभव न हो अथवा कोई व्यक्ति तीर्थसेवन में असमर्थ हो तो उन तीर्थों का मानसिकरूप से सेवन करने पर भी व्यक्ति यथार्थरूप में तीर्थसेवन के फल को प्राप्त कर सकता है। क्योंकि भगवान् के नाम और धाम के कीर्तन को सबसे बड़ा तीर्थ स्वीकार किया गया है। पद्मपुराण में कहा गया है कि केवल नामोच्चारण करते ही व्यक्ति, कुरुक्षेत्र, काशी, गया और द्वारिका आदि सम्पूर्ण तीर्थों का सेवन कर लेता है।

कुरुक्षेत्रं तथा काशी गया वै द्वारका तथा।
सर्वं तीर्थं कृतं तेन नामोच्चारणमात्रतः।। (पद्मपु. उत्तर. 71/21)

(यह लेख मुख्यत: गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित तीर्थांक, स्कंदपुराणांक, महाभारत(सटीक), तथा संक्षिप्त नारद-विष्णुपुराणांक, निर्णयसिन्धु: एवं धर्मसिन्धु: पर आधारित है।)

❀❀❀❀❀❀

1. रामचरितमानस में भी भगवान् शंकर द्वारा कहा गया है कि-
हरि ब्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना ।। (बाल. 184/3)